प्रकाशक :—

श्राविका-सन्मति-सदन

जम्मू (कश्मीर)

दीप - माला

१० नवम्बर · १९५८

मूल्य : प्रेमोपहार

किस को ?

जिन के साथ, मुझे जीवन में,
राष्ट्र के नए तीर्थ,
नांगल-भाखड़ा की सुखद
एवं प्रेरणाप्रद यात्रा
करने का सौभाग्य
मिला !

जीवन के उसी स्नेही साथी,
श्री चन्दन मुनि जी
के
कर-कमलों में
स-हर्ष,
स-स्नेह,
स-विनय,
समर्पित !

—सुरेश मुनि

रहे हैं। उन को ऐसी हाल में छोड कर, मेरी आत्मा की आवाज और आचार्य श्री जी के आदेश - सन्देश ने मुझे आगे बढने से रोक दिया है। जम्मू - कश्मीर का सारा प्रोग्राम स्थगित करके अब हम लुधियाना आचार्य श्री जी के चरणों में वापस लौट रहे हैं। मन की तरग मन में ही ले कर जा रहे हैं उलटे पैरों।"

इधर तो यह स्थिति वनी और उधर अमृतसर में आने-जाने वाले जम्मू के सज्जनो ने जम्मू आने के लिए हम पर जोर डालना शुरू किया! जम्मू वाले चौधरी ईश्वरदास जी, बा० मदन लाल, बा० प्रकाश चन्द, बा० राजकुमार आदि सज्जन हमें अमृतसर में मिलते रहे और जम्मू आने का जोरदार आग्रह करते रहे। मेरे स्नेही साथी श्री उमेश मुनि जी का विचार भी हुआ कि, पजाब आए हैं तो चलें, जम्मू भी होते चलें। बार-बार थोडे ही आना होता है इतनी दूर!

इस सारे वातावरण की सृष्टि से, मन में एक नया वातावरण वना। विचारों ने एक नया मोड लिया। और, जम्मू देख लेने का एक सकल्प वन गया हमारा निश्चित रूप में!

प्रोग्राम था जम्मू जाने का श्री ज्ञान मुनि जी का! जैन - प्रकाश के पन्नों पर भी उन की जम्मू-यात्रा की सूचना प्रकाश में आ चुकी थी। इधर, हमारा विचार था—अमृतसर से कपूरथला, जालन्धर, होशियार-पुर, फगवाडा होते हुए वगा-शहर में वीर-जयन्ती मनाने का! पर, विधि की विडम्बना की कहानी को कौन जान-समझ सकता है? विचार - दिशा के साथ विहार - दिशा कब-किधर घूम जाए—मनुष्य की बौद्धिक कल्पना से परे की बात है यह दरअसल! अपने यात्रा-पथ के नये मोड के सम्बन्ध में, मैं इतना ही कह सकता हूं कि,——"जो सोचा था, वह वहुत दूर चला गया और जिस की मन में भी कल्पना

नहीं की थी, वह सामने आ कर खडा हो गया :—

"यच्चिन्तितं तदिह दूरतरं प्रयाति,
यच्चेतसा न गणितं तदिहाभ्युपैति।"

अस्तु, अमृतसर से जम्मू की ओर प्रस्थान कर दिया हमने! प्रस्थान करते समय लोगों की ओर से हमें एक ही प्रश्न पूछा जा रहा था : "आप जम्मू जा रहे हैं तो, क्या कश्मीर भी जाएगे?'

इस सामयिक प्रश्न के सम्बन्ध में हमारा संक्षिप्त-सा यही उत्तर था — इस सम्बन्ध में अभी से क्या कहा जा सकता है? अभी तो जम्मू के लिए चल रहे हैं। आगे की बात आगे सोचेंगे।"

बटाले में, जम्मू-श्रीसघ की विनती स्वीकार करके ज्यों ही हम पठानकोट पहुचे तो, उसी दिन फिर जम्मू का 'श्री-सघ' सेवा में आ पहुचा। जल्दी ही जम्मू पहुच जाने की उन की आन्तरिक भावना हमारे सामने आई। विचार था कि दो-चार दिन पठानकोट में लगाएगे। किन्तु 'जम्मू-सघ' के विनम्र आग्रह से मजबूर हो गए! अगले दिन ही हमें पठानकोट से प्रयाण करने के लिए तैयार होना पड़ा। हमारे साथ ही पैदल चलने के लिए जम्मू श्री संघ का एक युवक-मडल भी कटिबद्ध हो गया। युवकों में थे ला० टेक चन्द जी, वाइस प्रेजीडेंट सत्यपाल, सुशीलकुमार, पवनकुमार, राजकुमार, शिमलकुमार और आगे रास्ते में मिल गये दर्शनकुमार, अजुध्याप्रसाद, तिलकराज, चाचा गड्डूमल, बलदेव, बलवीर आदि। और, साबा में तो संक्रान्ति का नाम सुनने के लिए जम्मू-बिरादरी के नर-नारियों का एक तांता-सा ही लग गया था!

पठानकोट से जम्मू तक की पद-यात्रा में जो भी युवक हमारे

साथ-साथ चले, वे बड़े ही उत्साही, और सेवा-भावी थे। साथ में पैदल चलते हुए, सेवा करते हुए, उन के मन और चेहरे प्रसन्नता से खिले रहते थे हरदम। उन के उत्साह और उमंग की तरंगों में पठानकोट से जम्मू तक की कठिन-कठोर मंजिल भी हम ने बड़ी आसानी के साथ पार कर ली एक सप्ताह के अन्दर ही।

साथ चलने वाले उन युवकों का भी हम से यही प्रश्न था :— "महाराज! क्या आप श्रीनगर (कश्मीर) भी जाएंगे? कश्मीर तो भारत का स्वर्ग है। उसे देखेंगे या नहीं आप?"

और, हमारा उत्तर था : "भविष्य की बात को भविष्य पर ही छोड़ दें, तो अच्छा! अनागत की चिन्ता से अपना मन बोझिल क्यों बनाएं हम अभी से!"

जम्मू पहुंचने के बाद, इधर-उधर से मेरे पास जो भी पत्र आए, उन में भी एकस्वर से यही प्रश्न पूछा जा रहा था, कृपालु महानुभावों और स्नेही साथियों की ओर से :— "क्या आप कश्मीर भी जा रहे हैं? और, साथ-साथ अपने पत्रों में वे हमें अपना यह शुभ परामर्श भी देते रहते :— "जब इतनी दूर पहुंच गए हैं, तो कश्मीर भी घूम आएं, तो अच्छा है। ऐसा अवसर और यह मौका जिन्दगी में बार - बार थोड़े ही मिलता!"

ऐसी स्थिति-परिस्थिति के प्रकाश में, मेरे और मेरे स्नेही साथी श्री उमेश मुनि जी के अन्तर्मन ने विचार-चिन्तन की एक गहरी और जोरदार अँगड़ाई ली। स्नेही साथियों और श्रद्धेय महानुभावों की कृपा-पूर्ण प्रेरणा से हमारा मानस तथा विचार भी उस रूप में ही ढलता-बदलता चला गया। "अब तो हमें कश्मीर की पद-यात्रा कर ही लेनी चाहिए"— ऐसा संकल्प बन गया हमारे मानस का। और, शायद को मौके की यह

बात सोने पर सुहागे का काम कर गई, हमारे दिल और दिमाग को अपील कर गई :—

"गुज़रने को गुज़र जाती हैं उमरें शादमानी में !
ये मौके कम मिला करते हैं लेकिन ज़िन्दगानी मे !!"

अपने मन का सकल्प हमने 'जम्मू - श्री संघ' के सामने रखा तो, सघ ने हमारे शुभ सकल्प का श्रद्धा के साथ स्वागत किया और हर तरह से अपनी सेवाएं अर्पित करके, उत्साह - भरे हृदय से हमारे मानसिक संकल्प को प्रोत्साहन दिया।

'जम्मू-श्री संघ' की प्रतिष्ठा, सेवा-निष्ठा की बातें मैं पजाब में काफी सुनता रहा था। सन्त और श्रावक—सब की एक ही आवाज़ थी — "जम्मू तो जम्मू ही है। वहा के संघ की भक्ति और सेवा की बराबरी कौन कर सकता है।" जम्मू पहुंचने पर मैंने अपनी आंखों से देखा कि, दरअसल, जो सुना था, वह सच था। बड़ा ही भक्ति-शील, श्रद्धा-परायण तथा सेवा-निष्ठ संघ है जम्मू का—यह मेरे हृदय की आवाज़ है !

"महावीर-जयन्ती" के बाद 'जम्मू - श्री सघ' ने बड़े ही उत्साह और उमग के साथ जम्मू में चातुर्मास करने के लिए भाव-भरी विनती-अभ्यर्थना की। सब का एक ही स्वर था :— "महाराज ! इस चौमासे का मौका तो जम्मू वालों को दीजिए। कहां दिल्ली-आगरा, कहा जम्मू और कहा इधर आप का पधारना। बड़े सौभाग्य से यह शुभ अवसर हाथ आया है हमारे। कृपा कीजिए 'जम्मू - संघ' पर, इस चातुर्मास की स्वीकृति देकर।"

भक्ति-भाव से भरी उनकी इस विनती को सुन कर हृदय गद्‌गद

बाजार में आए तो, जयजय-कार से आकाश गूंज उठा। बाजार के दोनो ओर पंक्ति-बद्ध जनता की भारी भीड़! और, हम चल पड़े उस भीड के बीचों-बीच! नौजवानो की जबान पर एक तराना तैर रहा था, जो अपना एक अलग ही समां बाध रह था :—

"दर्शन कर लो भाग्गां वालियो,
अज्ज टुर चले फकीर ने।"

माता - बहनें भी अपनी भक्ति की लहर में गा रही थीं :—

"आए सी गुरुवर प्यारे, दर्शन दिखा के चल्ले।
वाणी मनोहर अपनी सब नूं सुना के चल्ले॥"

सारा वातावरण उत्साह एवं भक्ति की लहरों से थिरक रहा था! बाजार के दोनों तरफ से जनता की भीड़ मर्यादा के बांध को तोड कर आगे—और आगे बढ़ जाने के लिए उमड - उमंग रही थी। युवक - मण्डली ने जन-मानस की लहर को देखा, और भीड को नियत्रण में लाने के लिए आगे बढ़ कर हाथ में हाथ डाले और बात की बात में हमारे चारों तरफ हाथों का एक घेरा डाल लिया। और, उस प्रेम तथा उत्साह के घेरे में घिरे हम तरंगित - हृदय से आगे बढ़ चले!

लगभग २५ - २६ दिन पहले जम्मू में हमारा धूम-धाम से स्वागत हुआ था और आज हम उसी जम्मू से कश्मीर जाने के लिए विदा ले रहे थे। स्वागत से भी दुगुने उत्साह की लहर थी जन-मानस में विदाई के समय—ऐसा मैंने अपनी आखों से देखा। किसी व्यक्ति के कहीं रहने या आने की सफलता उसकी विदाई पर ही निर्भर है दरअसल! जिस विदाई के पीछे जन-मन में स्वागत की अपेक्षा अधिक बढ़ा - चढ़ा प्रेम, उत्साह और तरंग हो तो, समझना चाहिए—उस व्यक्ति



कश्मीर के यात्री, जनता की भीड के साथ, जम्मू के जैन-बाजार में गुजरते हुए।

का वहां आना या रहना पूर्णतः सफल रहा है। और, वह जन-मन पर अपने व्यक्तित्व की एक अमिट छाप डाल कर चल रहा है। व्यक्ति जिधर जाए, उधर अपने व्यक्तित्व की एक लहर और महक न छोड़ जाए जनता के अन्तस्तल में, तो वह व्यक्ति और व्यक्तित्व ही क्या ? कवि भी तो इसी स्वर में अपना राग अलाप रहा है :—

"गुलिस्ताने जहां में बस वही कामयाब इन्सां है !
सबा की तरह जिस गुल से मिले, उस को हंसा आए !!"

जनता के बीच धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हुए, बाजार की सड़कों को पार करके हम नगर के बाहर एक सघन छायादार बड़ के दरख्त के नीचे पहुंचे। जनता की भीड़ ने चारों तरफ से हमें घेर लिया। और, मांगलिक - प्रवचन सुनाने के लिए हम एक ऊंचे चबूतरे पर खड़े हो गए।

मैं उच्च स्वर के साथ मांगलिक-प्रवचन सुना रहा था और वातावरण को पढ कर तरंगित भी हो रहा था। मांगलिक-प्रवचन का रस - पान कर, सब के मन भक्ति की मस्ती मे झूम - घूम रहे थे। सब के चेहरे खिल रहे थे। चेहरों पर खुशी और उत्साह की लहर साफ झलक रही थी। सब की भावनाएं एक नयी अंगड़ाई ले रही थीं, भक्ति-रस में डूब - डूब कर ! माता - बहनें, बड़े - बूढ़े सब भक्ति के रस को अपनी वाणी में उंडेल कर यही कह रहे थे — "महाराज, आप खुशी के साथ कश्मीर पधारिए। आप की यह यात्रा सफल हो। फिर जल्दी दर्शन देने का खयाल रखना। जम्मू में चौमासा करने के लिए जल्दी वापस लौटना।"

भक्ति - भावना से भरी उन की इस अभ्यर्थना - प्रार्थना को सुन

अपने मुस्तैदी कदम बढ़ा चले ! नौजवानों की एक पार्टी भी हमारे साथ-साथ अपना कदम बढ़ा रही थी। मास्टर केवलकृष्ण उस युवक-मंडल का नेतृत्व कर रहे थे। युवक ही नहीं, मैंने देखा—साठ सत्तर साल की उम्र के ला० अमरनाथ जी को भी भक्ति का रंग हमारे साथ बहाये लिए जा रहा था। दमे के बीमार और अभी-अभी उठे थे रुग्ण-शैया से वह ! पर, उन के हृदय की तरंग उन्हें हम से भी आगे लिए बढ़ी चली जा रही थी।

उधर, बा० त्रिलोकचंद जी—जो जम्मू-बिरादरी में एक कर्मठ, समझदार और स्फूर्तिशील व्यक्ति हैं— भी साथ-साथ पद-यात्रा का आनन्द ले रहे थे—और साथ में थे उनके सुपुत्र सत्यपाल और पौत्र अशोककुमार ! साढ़े पांच साल की छोटी उम्र में भी वह छोटा-सा बच्चा 'अशोक' हमारे आगे-आगे दौड़ रहा था तरंग में आकर ! दूसरी तरफ आंख उठा कर देखा तो, मास्टर केवलकृष्ण जी का सुपुत्र 'कुक्कू' भी तो साथ-साथ चल रहा था, जो 'अशोक' से भी छोटा था। इन के अतिरिक्त, ला० टेकचंद, बा० तिलकराज, अशोककुमार, दर्शनकुमार, चाचा गड्डूमल, श्रीपाल, तरसेमकुमार, वीरकुमार, सत्यप्रकाश और दस-बारह साल की उम्र के दो बच्चे— सुभाष और अजितकुमार— ये सब भी तो हमारे साथ-साथ चल रहे थे ! इन में कुछ तो थे कश्मीर तक हमारा साथ देने वाले और कुछ थे रास्ते से ही वापस लौट जाने वाले !

भक्ति और प्रेम की तरंग से अनुप्राणित होकर, ये सब साथी हमारे कदम-से-कदम मिलाकर चल रहे थे। हमारे से भी बढ़ कर उनके कदमों में तेजी थी, स्फूर्ति थी, उत्साह की गर्मी थी।

अपने मुस्तैदी कदम बढ़ा चले ! नौजवानों की एक पार्टी भी हमारे साथ-साथ अपना कदम बढ़ा रही थी। मास्टर केवलकृष्ण उस युवक-मंडल का नेतृत्व कर रहे थे। युवक ही नहीं, मैंने देखा—साठ सत्तर साल की उम्र के ला० अमरनाथ जी को भी नवीन का रंग हमारे साथ बहाये लिए जा रहा था। दमे के बीमार और अभी-अभी उठे थे रुग्ण-शैया से वह ! पर, उन के हृदय की तरंग उन्हें हम से भी आगे लिए बढ़ी चली जा रही थी।

उधर, बा० त्रिलोकचंद जी—जो जम्मू-बिरादरी में एक कर्मठ, समझदार और स्फूर्तिशील व्यक्ति हैं—भी साथ-साथ पद-यात्रा का आनन्द ले रहे थे—और साथ में थे उनके सुपुत्र सत्यपाल और पौत्र अशोककुमार ! साढ़े पांच साल की छोटी उम्र में भी वह छोटा-सा बच्चा 'अशोक' हमारे आगे-आगे दौड़ रहा था तरंग में आकर ! दूसरी तरफ आंख उठा कर देखा तो, मास्टर केवलकृष्ण जी का सुपुत्र 'कुक्कू' भी तो साथ-साथ चल रहा था, जो 'अशोक' से भी छोटा था। इन के अतिरिक्त, ला० टेकचंद, बा० तिलकराज, अशोककुमार, दर्शनकुमार, चाचा ग[illegible], धीपाल, तरसेमकुमार, वीरकुमार, सत्यप्रकाश और दस-बारह साल की उम्र के दो बच्चे— सुभाष और अजितकुमार— ये [illegible] तो हमारे साथ-साथ चल रहे थे ! इन में कुछ तो थे [illegible] हमारा साथ देने वाले और कुछ थे रास्ते से ही [illegible] जाने वाले !



जो—जो बूढ़े थे, कमज़ोर थे और दमे के बीमार भी थे—पीछे रह गए। हांफने-हांफते और कदम-कदम पर दम लेते हुए चल रहे थे वह ! स्थिति नहीं थी उन की उस विकट-पथ पर चलने की, लेकिन, हिम्मत और हौसला बुलन्द था उनका ! मेरे बार-बार रोकने पर भी, साथ-साथ चलने का उनका प्रबल आग्रह उन्हें हमारे साथ लिए चल रहा था !

हम सब तो ऊपर सड़क पर पहुच गए और ला० अमरनाथ जो पीछे पड गए। मैंने युवकों से कहा '—भई ! उस वृद्धे बाबा को भी सहारा देकर साथ ले आओ। फिर आगे चलेंगे।

एक युवक ने नीचे पगडंडी पर जाकर देखा तो, अभी काफी नीचे और दूर थे वह बूढ़े बाबा ! ज़ोरे-ज़ोर से हांफ रहे थे। दो क़दम चलते, फिर बैठ जाते। थोड़ा दम लेकर हाफते हुए फिर आगे बढ़ते। साहस करके वे ऊपर पहुच ही गए आखिर ! उनके इस साहस को देखकर उर्दू-कवि के ये स्वर मेरे दिल-दिमाग में रह-रह कर गूंजने लगे —

"पस्त-हिम्मत वो है, राहे शौक़ मे जो रह गए !
हौसले वाले के आगे दूर कुछ मंजिल नही !!"
"अहले हिम्मत मंजिले मक़सूद तक आ ही गए !
बन्दए तक़दीर क़िस्मत का गिला करते रहे !!"

सड़क पर पहुचते ही 'बाबा' बैठ गए। साथ में चलने वाले सब युवक उनको 'बाबा' ही कहते थे। मैंने पूछा — कहिए, क्या हाल है? आप की कृपा से सब ठीक है। अब तो मोर्चा जीत लिया है—चेहरे पर मुस्कराहट लाते हुए बाबा बोले।

मैने देखा, उनके स्वर में जिन्दादिली थी। शरीर बूढा जरूर था, पर दिल बूढा नही था। इसी का नाम तो जिन्दगी है. दरअसल :—

"जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है !
मुर्दादिल ख़ाक जिया करते है !!"

बूढ़े बाबा के लिए थोडी देर ठहरे और फिर आगे बढ़ चले। नन्दनी का पडाव आया—जहाँ आज हमें ठहरना था। ठहरने के लिए पूछा तो, कोई जगह नहीं मिली। युवको ने कहा—"महाराज ! स्थान नहीं मिलता, तो आगे चलिए। पाच मील पर 'वुमेल' का पडाव आएगा। वहाँ ठहर जाएँगे।"

युवको की बात मन पर असर कर गई, और हम आगे चल दिए। एक छोटी-सी सुरग में से हम तो परले पार हो गए; लेकिन ला० अमरनाथ और टेकचद जी पीछे ही रह गए जगह की तलाश करते हुए ! हम थोडी ही दूर चले थे कि, इतने में ला० अमरनाथ और टेकचद जी भी अपने तेज कदम बढाते हुए साथ आ मिले। लडकों ने मजाकिया ढग से कहा ! "आइए, बाबा जी ! कहा रह गए थे पीछे ? नन्दनी कहाँ है आपकी ?"

इतना सुनते ही बाबा लाल-पीले हो गए ! बोले :—"तुम लोग खुद तो तग होते ही हो, साथ में महाराज को भी परेशान करते हो। पीछे नहीं ठहरने दिया वहा पर। जगह मिल गई थी। अब आगे कहाँ जाओगे गर्मी में ? तुम्हें कुछ भी पता नहीं है सफर की कठिनाइयो का ! सब-के-सब नये रगरूट चल पडे हैं साथ में यात्रा करने के लिए !"

बाबा कुछ बीमार थे, कुछ कमजोर थे, और कुछ थे आदत से लाचार। ऐसी ही स्थिति थी उनकी। मैंने इशारा किया, युवक समझ गए और चुप-चाप उन की बातों को पी गए। अपनी तीव्र लहर के साथ जो कुछ भी कहना था— एक सांस में कह गए बूढ़े बाबा।

बीच में ही हस्तक्षेप करते हुए शांति और प्रेम के साथ मैंने कहा :—"लाला! बच्चे हैं, कोई बात नहीं। इस में इनका अपराध भी क्या है? ये हमें धक्का देकर थोड़े ही लाए हैं? आए तो हम खुद हैं। मन में तरंग आई, तो चल दिए। अब तो आगे आ ही गए। अब वापस थोड़े ही लौटा जा सकता है? जब वहां का दाना-पानी ही नहीं था, तो ठहर भी कैसे सकते थे वहां पर हम! दाने-दाने पर मुहर लगी है। जहां का अन्न-जल संस्कार होगा, वहां पहुंच जाएंगे चलते-चलते! सब कुछ 'स्पर्शना' ही के तो अधीन है। 'स्पर्शना' से आगे बढ़कर हम या आप कर भी क्या सकते हैं?—

"जो-जो देखी वीतराग ने, सो-सो होसी वीरा रे!
अनहोनी कबहुं नहि होसी, तू क्यों होत अधीरा रे!!"

'निश्चयवाद' की बात बूढ़े बाबा के दिल को छू गई। और बाबा के तन-मन एकदम शांत हो गए।

दरअसल, 'निश्चयवाद' हमारे मन का बहुत जल्दी समाधान करता है। 'निश्चयवाद' का महान् आदर्श, यदि जीवन का यथार्थ बन जाए और निश्चय-दृष्टि का प्रकाश यदि जीवन में आ जाए तो, हमारे तन-मन के सब क्लेश-ताप और कलह-विवाद

एकदम शांत हो जाते हैं। कैसी भी विषम स्थिति क्यों न आ जाए जीवन के सामने; 'निश्चयवाद' की चिन्तन-धारा के अन्तर्गत में प्रवाहित होते ही, उस स्थिति के विष को पी जाने का बल जाग्रत हो जाता है हमारे अन्दर ! फिर न क्रोध की लहर आती और न ही चिन्ता की काली रेखाएं तन-मन पर छा पातीं; और न ही किसी तरह की अकुलाहट-घबराहट पैदा होने पाती और न वह विषम स्थिति हमारे जीवन पर किसी तरह का बोझ ही बनने पाती। हंसते-मुस्कराते हम उस स्थिति को पार कर जाते हैं आसानी के साथ !

इसके विपरीत, किसी विकट-स्थिति के सामने आते ही, जब हम व्यवहार को पकड़ लेते हैं, बाहर की तरफ देखने लगते हैं, तो हमारे मन की मशीनरी गरम हो जाती है। विषाद तथा चिन्ताओं का झंझावात हमारे मानस को घेर लेता है। कलह-क्लेश वातावरण पर छा जाते हैं। हम अपने आपे से बाहर हो जाते हैं। इधर-तिधर बरसने के लिए गर्जने पर उतारू हो जाते हैं। मन के जहर को बाहर फेंकने की कोशिश करने लगते हैं। अपने आप में उलझ कर हम बाहर की दुनिया में भी उलझनें पैदा कर देते हैं।

खैर, 'निश्चयवाद' की बात ने बूढ़े के दिमाग की मशीनरी को बदल दिया, उसके तन मन-नयन को एकदम शांत कर दिया। और, हम अपनी मंजिल पर आगे बढ़ चले चैन की बंसी बजाते हुए !

चलते-चलते बारह बजने को आए ! धूप में तेजी थी ! सड़क गर्म हो चली थी ! जमीन-आसमान तपने लगे थे। पास में हमारे पानी नहीं रहा। प्यास लगी। इधर देखा, उधर देखा,

इधर, हम चले वहा से सात वजे! साथ में थे आज सव युवक-ही-युवक! वड़े-वुजुर्ग सव आज सामान के साथ पीछे ही रह गए थे!

तीन मील सडक से चलने के वाद, हमारे सामने दो रास्ते थे! एक रास्ता था सडक का और पगडडी का! सडक का रास्ता सीधा, पर पाच मील का! पगडडी का रास्ता विकट, कठिन, पहाड की खडी चढ़ाई; परन्तु दो मील केवल! युवकों की आवाज थी: पगडडी के रास्ते से ही चला जाए।

अव, युवकों की दृष्टि थी मेरी ओर! मेरे अन्दर यह मनोमन्थन चल रहा था पहले से ही कि, क्या करूं? सडक के रास्ते से मंजिल तय करूं या पगडंडी से पहाडी की चडाई चढूं? और, यह सव विचार-लहरी मेरे मानस के अन्तराल में चल रही थी इसलिए कि, जम्मू में कश्मीर के सव से वडे डाक्टर शिगलू ने, हृदय-परीक्षण करके मेरे सामने एक विकट समस्या खडी कर दी थी! "आप के हृदय की स्थिति कुछ अच्छी नहीं है, इसलिए, आप पहाड की जरा भी चढाई मत कीजिए"—ऐसा डाक्टर ने अपनी निषेधात्मक भाषा में स्पष्ट कह दिया था।

ऐसी स्थिति में, एक तरफ डॉक्टर का फैसला और दूसरी तरफ़ हृदय की तरग और मन की उमंग! कुछ क्षणो तक मन दुविधा के झूले पर झूलता रहा! आखिर, मन ने फैसला कर ही लिया और मैं तरंगित स्वर में वोल उठा: कठिनाई हो, चाहे कुछ हो; चलना है हमें पगडडी के मार्ग से ही! सड़क-सड़क चले तो क्या चले? चलना तो वह है कि, पर्वत की चोटियों पर क़दम रखकर चलें! ये डॉक्टर लोग तो यों ही अपना फैसला देते रहते हैं! हमें तो

मार्ग से सर्वथा अनभिज्ञ-अपरिचित ! आदमी कोई मिला नहीं ! अब चलें तो किधर से चलें – यह एक बड़ी कठिन समस्या थी। सामने, दूर पगडंडी पर, एक आदमी जाता हुआ नजर आ ही गया। सोचा : चलो, इधर से ही चलें ! चल पड़े ! मंजिल किधर है, कुछ पता नहीं ! कवि के शब्दों में, हमारी ठीक स्थिति ऐसी ही थी उस समय :—

"मंजिल किधर है, इस पै अपनी नजर नहीं !
जो राह मे मिला, उसी राही के साथ है !!"

पगडंडी से चलते-चलते हम बहुत दूर सड़क पर जा निकले ! टिकरी—जो हमारा आज का पड़ाव था—से भी आध मील आगे ! मास्टर केवलकृष्ण उधर से हमें लेने के लिए आगे आए तो बोले : आपने असली पगडंडी तो छोड़ ही दी और दूसरी पगडंडी पकड़ ली ! दूसरी पगडंडी सीधी पड़ाव पर ही पहुंचती थी ! आप तो रास्ता भूल गए हैं आज !

मैंने कहा : कोई बात नहीं मास्टर जी ! मंजिल तय होने से मतलब है ! सुबह का भूला शाम को घर आ जाए तो, भूला हुआ नहीं समझा जाता :—

उसे भूला न कहना चाहिए, गर सुबह का भूला !
बवक्ते शाम भी फिरता-फिराता अपने घर आए !!"

मेरी बात पर सब खिलखिला पड़े और बातों-ही-बातों में टिकरी जा पहुंचे हम ! स्कूल में ठहरना था; पर स्कूल का ताला बन्द ! बाहर मैदान में, एक वृक्ष की ठंडी छाया में ही डेरा डाल

किसी इरादे, संकल्प, मुहूर्त, दिन अथवा आगे-पीछे से बंधकर हम नहीं चलना चाहते! अब तो हमें स्वतंत्र-रूप से अपनी मौज-मस्ती की लहर में अपनी यात्रा नापने दीजिए!

मेरी सीधी-सच्ची बात लोगों के गले उतर गई! एक जादुई असर पड़ा लोगों के मन पर हमारी स्पष्टता का!

हां तो, आज था वही रविवार का दिन, अप्रैल की तेरह तारीख, वैसाखी का त्योहार और संक्रान्ति का मंगल-प्रभात! हमारे सह-यात्री युवक आज सूर्योदय से पहले ही चलने के लिए तैयार हो गए थे! सब-के-सब उतावले थे आज चलने के लिए! राजमार्ग से आठ मील की मंजिल तय करके गढ़ी पहुंच जाने का दृढ़ संकल्प था सब के मन में!

परन्तु, हम चल सके आध घंटा सूरज चढ़ने के बाद! दो-तीन व्यक्ति सामान लाने के लिए पीछे रह गए थे, शेष सब आज हमारे साथ थे! सडक पर आज अच्छी चहल-पहल थी! क्योंकि, इधर-उधर के ग्रामीण लोग वैसाखी का मेला-ठेला देखने के लिए ऊधमपुर की ओर तेजी से क़दम बढ़ा रहे थे! नयी रंग-बिरंगी वेश-भूषा धारण किए प्रसन्न-मन से स्त्री, पुरुष, युवक, बच्चे अपनी-अपनी धुन में आगे बढ़ रहे थे मेला-ठेला देखने की उमंग में उनकी तेज रफ्तार को देख कर हमारे क़दम भी कुछ तेज हो चले थे! कुछ थोडा आगे और कुछ थोड़ा पीछे—इस तरह बढ़ चला जा रहा था हमारा क़ाफला! पहाड़ों के सहारे-सहारे घूमती फिरती, चक्कर खाती सडक पर चलते हुए आज यात्रा में बड़ा ही आनन्द आ रहा था वास्तव में!

लगभग पांच -छह मील चलने पर धूप तेज हो चली थी ! गर्मी अपना ख़ासा रंग दिखाने लगी थी ! आगे चल कर थोडा दम लेने और पानी-वानी पीने के लिए पथरीली चट्टानो पर बैठ गए हम, एक पहाडी की छाया में सडक के सहारे ! पानी गरम था हमारे पास ! उसे ठडा करने का उपक्रम करने लगे ! इतने में, पीछे से एक लारी आई और सहसा हमारे पास ही ठहर गई आकर ! देखा तो, मास्टर केवलकृष्ण जी का परिवार— उनके पिता जी, भाई, धर्म-पत्नी, भाभी, बहन और बाल-बच्चो का जमघट—आ निकला !

उन्हें देखते ही मैंने पूछा : क्यो, आज किधर को चली ये सवारिया ?

उनका जवाब था : आपके दर्शनों को, और किधर को ! आपने तो रास्ते का कहीं अता-पता दिया नहीं था; परन्तु, खोजने वाले तो हर कहीं खोज ही लेते हैं !

मैंने कहा बात ठीक ही है आपकी ! आपकी इस बात पर तो संत कबीर पहले ही अपनी वाणी की मुहर लगा गए हैं :—

"जिन खोजा, तिन पाइयाँ;
गहरे पानी पैठ !"

नवागन्तुक सदस्य थोडी देर रुके ! कुछ विश्राम लिया ! बात-चीत की; आगे का प्रोग्राम लिया और लारी में बैठकर हवा हो गए !

हमने भी पानी-वानी पिया, और अपना रास्ता नापना शुरू किया तेज़, मुस्तैदी क़दमो से ! गर्मी के कारण जल्दी-जल्दी पड़ा क़दम बढ़ाना और लब पर था यह तराना :—

किसी इरादे, संकल्प, मुहूर्त, दिन अथवा आगे-पीछे से बंधकर ह
नहीं चलना चाहते ! अब तो हमें स्वतंत्र-रूप से अपनी मौज-मस्त
की लहर में अपनी यात्रा नापने दीजिए !

मेरी सीधी-सच्ची बात लोगों के गले उतर गई ! एक जादु
असर पड़ा लोगों के मन पर हमारी स्पष्टता का !

हां तो, आज था वही रविवार का दिन, अप्रैल की तेरह तारीख
वैसाखी का त्यौहार और सक्रान्ति का मगल-प्रभात ! हमारे सह-यात्र
युवक आज सूर्योदय से पहले ही चलने के लिए तैयार हो गए थे
सब-के-सब उतावले थे आज चलने के लिए ! राजमार्ग से आठ मील
की मंजिल तय करके गढ़ी पहुंच जाने का दृढ संकल्प था सब के
मन में !

परन्तु, हम चल सके आध घंटा सूरज चढ़ने के बाद ! दो-तीन
व्यक्ति सामान लाने के लिए पीछे रह गए थे, शेष सब आज
हमारे साथ थे ! सड़क पर आज अच्छी चहल-पहल थी ! क्योंकि
इधर-उधर के ग्रामीण लोग वैसाखी का मेला-ठेला देखने के लिए
ऊधमपुर की ओर तेजी से क़दम बढ़ा रहे थे ! नयी रंग-बिरंगी
वेश-भूषा धारण किए प्रसन्न-मन से स्त्री, पुरुष, युवक, बच्चे अपनी-
अपनी धुन में आगे बढ़ रहे थे मेला-ठेला देखने की उमग में !
उनकी तेज रफ्तार को देख कर हमारे क़दम भी कुछ तेज हो
चले थे ! कुछ थोडा आगे और कुछ थोड़ा पीछे—इस तरह बढ़ा
चला जा रहा था हमारा क़ाफला ! पहाड़ों के सहारे-सहारे घूमती-
फिरती, चक्कर खाती सडक पर चलते हुए आज यात्रा में बड़ा ही
आनन्द आ रहा था वास्तव में !

लगभग पाच -छह मील चलने पर धूप तेज हो चली थी ! गर्मी अपना खासा रग दिखाने लगी थी ! आगे चल कर थोड़ा दम लेने और पानी-वानी पीने के लिए पथरीली चट्टानो पर बैठ गए हम, एक पहाडी की छाया में सडक के सहारे ! पानी गरम था हमारे पास ! उसे ठडा करने का उपक्रम करने लगे ! इतने में, पीछे से एक लारी आई और सहसा हमारे पास ही ठहर गई आकर ! देखा तो, मास्टर केवलकृष्ण जी का परिवार— उनके पिता जी, भाई, धर्म-पत्नी, भाभी, बहन और बाल-बच्चो का जमघट—आ निकला !

उन्हें देखते ही मैंने पूछा : क्यो, आज किधर को चली ये सवारिया ?

उनका जवाब था : आपके दर्शनो को, और किधर को ! आपने तो रास्ते का कहीं अता-पता दिया नहीं था; परन्तु, खोजने वाले तो हर कहीं खोज ही लेते हैं !

मैंने कहा बात ठीक ही है आपकी ! आपकी इस बात पर तो सत कबीर पहले ही अपनी वाणी की मुहर लगा गए हैं :—

"जिन खोजा, तिन पाइयॉ;
गहरे पानी पैठ !"

नवागन्तुक सदस्य थोड़ी देर रुके ! कुछ विश्राम लिया ! बात-चीत की; आगे का प्रोग्राम लिया और लारी में बैठकर हवा हो गए !

हमने भी पानी-वानी पिया; और अपना रास्ता नापना शुरू किया तेज, मुस्तैदी क़दमों से ! गर्मी के कारण जल्दी-जल्दी पड़ा क़दम बढ़ाना और लब पर था यह तराना :—

मेरी कश्मीर-यात्रा के पन्ने

लेखक :-
उपाध्याय कविरत्न श्री अमरचन्द्र जी महाराज के सुशिष्य -
मुनि सुरेशचन्द्र जी, शास्त्री "साहित्यरत्न"

श्राविका-सन्मति-सदन
जम्मू [कश्मीर]

मेरी इस विनोद - भरी चुटकी से सब के चेहरे मुस्कान से भर गए ! और, क़दम-से-कदम मिला कर बढ़ चले हम सब आगे की ओर !

गढ़ी, (ऊधमपुर) एक अच्छा केन्द्र समझा जाता है इधर भारतीय मिल्टरी का ! और, इसी कारण ऊधमपुर की काया - पलट हो चली है ! सड़क के इधर - उधर, दोनों ओर मिल्टरी का लंबा सिलसिला चला गया है गढ़ी से ऊधमपुर तक ! दायें - बायें नज़र घुमाते हुए और मिल्टरी की चहल-पहल देखते-निरखते हुए हम अपनी मौज - मस्ती की तरंग में धीरे-धीरे चलते रहे ! लगभग नौ बजे ऊधमपुर में प्रवेश किया हम ने ! बाजार, गली-कूचों में बड़ी भीड़ थी मेले-ठेले के कारण ! बड़ी मुश्किल से बाजार से गुजर कर धर्मशाला तक पहुच सके हम ! धर्मशाला में भी देखा तो—आदमी ही आदमी ! हल्ला-गुल्ला और गुल-गपाड़ा ! ऊपर, तीसरी मंजिल पर, दो प्राईवेट कमरे थे धर्मशाला वाले सेठो के ! उन में से एक खाली कमरा खुल गया और हम ने उसी कमरे में अपने आसन जमा दिए ! सह-यात्री सज्जन पहले ही नीचे के एक कमरे में जगह पा चुके थे !

बैसाखी के दिन ऊधमपुर मे बड़ा भारी मेला लगता है प्रति वर्ष !, लगातार तीन दिन तक चलती है मेले की यह चहल-पहल ! काफी दूर-दूर के पहाड़ी देहाती लोग आते हैं मेला - ठेला देखने के लिए ! पर्वतीय - प्रदेश के ये देहाती लोग अपनी रंग - बिरंगी वेश-भूषा में सजे - संवरे इधर - उधर घूम - फिर रहे थे अपनी - अपनी धुन में !

सारे ऊधमपुर कस्बे में, बस, यही एक धर्मशाला है ले - देकर आगन्तुक यात्रियो के ठहरने के लिए ! ज्यों - ज्यो सूरज ढल रहा था

बीड़ी के प्रचारक जन-मन को आकर्षित करने के लिए क्या-कुछ प्रयत्न करते हैं—यह सूरज के उजियारे की भांति स्पष्ट है! पाँवो में घूंघरु बाध कर ताल-स्वर में गाते हुए उन प्रचारकों की यह आवाज किस के कानों में न पडी होगी :—

"सत्ताईस नम्बर बीड़ी पिया करो, तुम हिन्दुस्तानी भाई!
पैसे मे बंडल लिया करो, तुम हिन्दुस्तानी भाई!!"

प्रचार और विज्ञापन के इन हथकडो से भारत के कच्चे दिमाग यह सोचने को मजबूर हो जाते हैं कि चलो, एक पैसे की बात है! एक बडल खरीद कर देख तो लो कि, बीडी के धुंए में कैसा जायका है? एक पैसे का धुआ देखना तो कोई बडी बात नहीं! बस, बीमारी यहीं से शुरु होती है! और, बडो, घर वालो तथा दूसरो की देखा-देखी यह सक्रामक रोग बालक-बालिकाओ के तन-मन पर भी बुरी तरह छा जाता है! यह रोग पीछे लगा तो फिर जीवन में अपनी जडें गहरी जमा लेता है! जिन्दगी की अच्छाइयां धूँए के साथ उडनी शुरु हो जाती है! कवि का इशारा भी इसी ओर हैं —

"मुँह मे गट-गट सोडावाटर, और सिगारो का धुँआ!
जोफ़ की दिल में शिकायत, रास को अब जा कहाँ!!"

और, व्यसन की इस आदत को छुड़ाया भी तो जा सकता है! कौन-सा रोग है ऐसा ससार में, जिस का इलाज न किया जा सकता हो? अगर इन अभद्र तथा विषैले विचारों के विरोध में डट कर मोर्चा लगाया जाए, और जनता के साथ जीवित सम्पर्क जोड कर उसे प्रेम से समझाया जाए कि, धूम्र-पान से कैंसर हो जाता है, गले तथा फेफडो

को भारी क्षति पहुंचती है ! स्वास्थ्य पर बुरा असर और व्यर्थ में पैसा बर्बाद ! हानि के अतिरिक्त लाभ कुछ भी नहीं तो, मैं समझता हूं, कम-से-कम इन ग्रामीण और इन सीधे-सरल लोगों की जिन्दगी को करवट बदलते देर न लगे ! अन्धकार की अपेक्षा प्रकाश की शक्ति तीव्रतम है ! अन्धकार चाहे कितना भी गहरा क्यों न हो, प्रकाश के आगे आज तक वह न ठहरा है और न ठहर सकेगा !

कमरे में बैठा-बैठा मैं बहुत देर तक इन्हीं विचारों में उड़ता रहा ! दिल यही कह रहा था —

"हर दर्दमन्द दिल को रोना मेरा रुला दे !
बेहोश जो पड़े हैं, शायद उन्हें जगा दे !!"

हां तो, रात के ग्यारह-बारह बजे तक वे पहाडी लोग अपनी-अपनी मंडली के रूप में अलग-अलग घेरा बनाए बैठे रहे और अपनी अपनी लहर मे पहाडी लोक-गीत कानो पर हाथ रख-रख कर, बडे हो-हल्ले के साथ गाते रहे ! क्या गा रहे थे वे अपनी लहर में— हम कुछ भी जान-समझ न सके ! 'हो-हो' की ध्वनि के अतिरिक्त हमारी समझ में कुछ भी न आ सका !

धर्मशाला ही क्या, इधर-उधर भी यह गुल-गपाडा दो दिन तक चलता रहा ! तीसरे दिन जब मेले का जोश ठंडा पड़ गया तो, रात के समय, ऊधमपुर के कुछ प्रेमी-सज्जन कहने लगे महाराज ! तीन दिन तक लोग मेले-ठेले की उलझनों में उलझे रहे, अपने काम-धन्धों से चिपटे रहे ! आज फुर्सत मिली है हमें तो ! आप आए भी; परन्तु हम कुछ सेवा न कर सके ! खैर, आशा तो हम अधिक रखते थे ! किन्तु, आपके सामने कश्मीर की लंबी यात्रा है !

चातुर्मास से पहले आप कश्मीर से वापस लौट जाना चाहते हैं—ऐसा आप का विचार हम को मालूम हुआ हैं। पर, गंगा के घर आने पर भी, हम प्यासे-के-प्यासे ही रह जाएँ, यह भी तो दुर्भाग्य की ही बात होगी! कम-से-कम दो-चार कथाएँ सुना कर हमारी कुछ प्यास तो बुझा ही दीजिए! अधिक आग्रह तो हम नहीं कर सकते, केवल नम्र-प्रार्थना ही कर सकते हैं श्री-चरणों में! भक्ति-भाव में रगी-पगी महिलाओं का भी यही स्वर था दिन के समय!

हालांकि, सहयात्री युवक-वर्ग का दृढ विचार था कि, कल यहां से अवश्य चल देना है! दो दिन के हल्ले-गुल्ले से उन का नाक में दम आ चुका था! यहां से विहार करके आगे चलने में ही शान्ति मिलेगी, उनकी इस भावना के बावजूद भी, लोगों की विनम्र बात को मैंने गम्भीरता से लिया! सोचा: उधमपुर में कब-कब आना होता है! पहली बार ही यहां कदम रखा है! लोगों की हार्दिक भावना है तो, एक-दो कथा सुनाना—यह तो एक कर्तव्य हो जाता है, एक सन्त होने के नाते! जन-मानस में अहिंसा-सत्य की ज्योति जगाना और अपने पीछे एक महकता वातावरण छोड़ जाना—यह भी तो साधना का ही एक अंग है! मैं वापस आ सकूँ या न आ सकूँ इधर से! फिर, इन भक्ति-शील भक्तों के प्रेम-प्रस्ताव का स्वागत-सत्कार क्यों न करूँ? कवि का स्वर भी इसी भव्य आदर्श की याद दिला रहा था —

"जहाँ में चार दिन रहकर, फ़कत बूए वफ़ा देना!
गुलों से मैं सबक सीखा हूं आईने मुहब्बत का!!"

मन की बात को बाहर रखते हुए मैंने कहा: अच्छा, विचार तो हमारा कल सुबह प्रस्थान का चल रहा था! परन्तु, ऊधमपुर

में आऊँ, विना कथा सुनाए चला जाऊँ, आप लोगों के दिल को ठेस पहुंचाऊँ—यह भी मन नहीं चाहता! तो इस का अर्थ यह है कि, कल मैं अपना विहार का प्रोग्राम स्थगित रखूँगा, यहीं ठहरूँगा, सुबह कथा सुनाऊँगा और आप चाहेंगे तो, मैं रात को भी कथा सुना सकूंगा! आप-जैसे श्रद्धालु-सज्जनों की सद्भावना का मैं हृदय से स्वागत करता हू! आप को थोड़ा-बहुत सुनाए विना मैं कैसे आगे बढ़ सकता हूं?

हृदय की गहराई से निकली मेरी इस बात से सब के तन-मन खिल उठे! अगले दिन हम वहाँ प्रसन्न लहरों में ठहरे! सुबह और रात को कथा का अच्छा रंग जमा! लोग बड़े ही भावुक और भक्ति-शील हैं! प्रसिद्ध-वक्ता श्री विमल मुनि जी को यहां की जनता खूब याद करती है! कलापूर्ण व्यक्तित्व का ऐसा जादू-भरा चमत्कार हर किसी को प्राप्त नहीं होता संसार के मच पर—ऐसा मेरा स्पष्ट विचार है!

किनारे-किनारे मुड़ती, घूमती, चक्कर-खाती सड़क! प्राय. रूखे-रूखे पहाड़, कहीं-कहीं पर चीढ़ के दरख़्त ऊँचे पहाड़ों पर! सड़क पर धूप-ही-धूप! बैठने के लिए छाया तक भी दुर्लभ! पहले तो चले हम यूँही मौज-मस्ती में घूमते, रुकते, बैठते, उठते; परन्तु, धूप ने जब अपना तेज रंग दिखाना शुरू किया तो, क़दमों में भी तेजी आ गई हमारे! लगभग बारह बजे सिरमौली पहुच पाए हम बड़ी मुश्किल से! धूप के कारण आज कुछ परेशानी रही!

सिरमौली, कोई खास बस्ती नहीं है! दो-तीन छोटी-मोटी दूकानें, पाच-चार झोपड़ियां और छोटे-मोटे घर! सिर छिपाने को भी जगह न मिल सकी वहा पर! बस्ती वालों के सामने भी मजबूरी! अपनी छोटी-मोटी कुटिया में वे खुद बैठें या हमें रहने के लिए जगह दें! टेढ़ी समस्या थी एक! परन्तु, हर समस्या का समाधान भी निकल आता है कोई-न-कोई! सड़क से नीचे उतर कर एक सघन छायादार वृक्ष था! वही हमारे लिए आज सुन्दर घर बन गया, रंग-महल बन गया, रमणीय विश्राम-स्थल बन गया! उसकी छाया में ही डेरा डाल दिया हमने! बस्ती या जंगल—जहा भी आसन बिछ गया, वही तो घर या डेरा है अपना! मन तरंगित होकर अन्दर-ही-अन्दर बोल रहा था काव्य के स्वर में :—

"हम ख़ानाबदोशों का कोई घर नहीं होता!
बस्ती मे कभी हैं, तो जंगल में कभी हैं!!"

'कर-तल-भिक्षा' और 'तरु-तल-वास'—भारतीय संस्कृति में साधक-जीवन की ये दो उच्च भूमिकाएं हैं! 'करतल-भिक्षा' की तो

नौबत नहीं आ पाई है अभी जीवन में; परन्तु, 'तरु-तल-वास' का तो खूब आनन्द लिया उस दिन हमने मस्ती के क्षणों मे! नितान्त एकान्त और शान्त वातावरण! और, साथ में यह मस्ती-भरा तराना:—

"हम मस्त फ़क़ीरों का, इतना ही फ़साना है!
मस्ती-भरी ज़िन्दगी मे, मस्ती का तराना है!!"

सहयात्री युवको ने जगह तलाश करने के लिए काफी दौड़-धूप की थी! अपने प्रयत्न में असफल होने के कारण, चेहरो पर उनके उदासी और चिन्ता साफ झलक रही थी! उनके मानस को झकझोरते हुए मैंने मस्ती के स्वर में कहा: वीर-बहादुरो! चिन्ता किस बात की? यह तो बडा सुन्दर स्थान मिल गया है हमें! ऐसा रमणीय विश्राम-स्थान तो जीवन-यात्रा में कभी-कभी ही मिल पाता है सौभाग्य से! हमारा तो तन-मन तथा रोम-रोम प्रसन्न एव तरगित है वृक्ष की इस ठडी-शीतल छाया मे ठहर कर! हर हाल में खुश रहना, और जीवन की प्रत्येक स्थिति में निश्चिन्तता तथा मस्ती का अनुभव करना ही तो मस्त-फ़क़ीरी है! चिन्ता-फिकर तो सारी दुनिया को खाये जा रहे हैं! लेकिन, जो चिन्ता फिकर को ही खा जाए—उसी का नाम तो फ़कीर है:—

"फिकर सभी को खा गया, फ़िकर सभी का पीर!
फ़िकर की फांकी जो करे, उसका नाम फ़कीर!!"

इसलिए, हमारी मस्ती की हस्ती का तो इतना ही फ़साना है:—

"हर हाल में खुश रहना, खुश रहके अलम सहना!
इक चीज़ ज़माने में, मस्ती की भी हस्ती है!!"

प्रकाशक :—

श्राविका-सन्मति-सदन

जम्मू (कश्मीर)

दीप - माला

१० नवम्बर : १९५८

मूल्य : प्रेमोपहार

मुद्रक :

दीवान प्रेस जम्मू

फोन नं० ३५१

मस्ती-भरे इस तराने और अफसाने पर सब झूम उठे और, मुरझाये चेहरे खिलखिलाहट और मुस्कराहट में बदल गए। लगभग एक बजे, पीछे के यात्री भी गाडी में सामान लेकर आ पहुचे! ठहरने की असुविधा के कारण, उसी गाडी से वे आगे बढ़ गए चिनैनी की ओर! तिलक, सागर, तरसेम, और सोहन लाल डोगरा हमारे साथ वहीं पर ठहर गए!

वृक्ष की ठडी-शीतल छाया! शीतल-मन्द समीर, तवी-नदी के किनारे एकान्त, शान्त वातावरण! भोजनादि से निपट कर कुछ देर आराम किया! पर, अभी तो चिनैनी पहुचना था! यात्रा में आराम कहा दूर के मुसाफिरो को? तवी-नदी पुकार-पुकार कर कह रही थी:—

"चरैवेति, चरैवेति"

चले - चलो! बढ़े - चलो!! चलना ही तो जीवन है!!!

तीन, सवा-तीन बजे चल पडे हम वृक्ष की उस ठंडी छाया-माया को छोड कर! सूर्य अपनी तेजी पर था! जमीन तप रही थी! सडक जल रही थी, और, हम मस्त-दीवाने अपनी धुन में बढ़े चले जा रहे थे! धूप और गर्मी में, हम अभी तीन मील ही चल पाए होंगे कि, आकाश में बादल घिर आए! बादलों की गडगडाहट और बिजली की कडकड़ाहट ने एक नया रग दिखलाया! बादलो की छाया और ठडी हवा! प्रकृति भी क्षण-क्षण में अपना कैसा रूप-रंग बदलती है! देखते-देखते वर्षा शुरू हो गई! ठहरने को वहां मकान और स्थान कहा? नजर दौड़ाई तो, खडे होने के लिए कोई छायादार वृक्ष भी दिखलाई न पडा!

थोडे आगे बढ़े तो, सडक के किनारे ही मजदूरों की बनाई हुई एक छोटी-सी कुटिया मिल गई ! बैठे-बैठे सरक कर उस में प्रवेश किया ! हम दोनो मुनि ही बैठ सके उस में मुश्किल से ! कुटिया क्या, बस सिर छिपाने के लिए पत्थरो के ऊपर यों ही घास-फूस डाल रखा था ! साथ के युवक, पास में ही एक नाले में घुस गए सडक के नीचे और अपनी मस्ती का गाना गाते रहे ! बादलों ने बारिश की खूब बहार दिखलाई ! उस कुटिया में आध-पौन घण्टे तक बैठे हम मजे से और सहचर युवक नाले में बैठे-बैठे अपना तराना सुनाते रहे, अपनी तरग में गुनगुनाते रहे !

तेज हवा चली ! बादल फटे-हटे, और वर्षा बद हो गई ! जम्मू से प्रस्थान करने के बाद, हमारे यात्रा-पथ की यह सब से पहली बारिश थी ! वर्षा ने प्रकृति नटी का रूप-रग सवार-निखार दिया था ! उमगते-पुलकते हम तेजी से आगे बढे, जल्दी से मजिल को नापने के लिए ! और, आगे मिल गए ला० टेकचद जी और कुछ युवक अगवानी करने के लिए ! क्या खूब जिन्दगी की बहार थी वह भी पहाडी दुनिया में ! मैंने पूछा : क्यो, कितनी दूर रह गया है अब पडाव आप का ? युवक हस कर बोले : वह रहा सडक के उस मोड़ पर ! अब तो पहुच ही गए—यह समझ लीजिए !

सूरज तेजी से चल रहा था ! दिन जल्दी-जल्दी ढल रहा था ! और, हमारे क़दम भी अत्यन्त शीघ्रता से उठ रहे थे ! कवि की यह प्रासगिक अन्तर्वाणी कदमो को एक नया जोश दे रही थी :—

"दिन जल्दी-जल्दी ढलता है !
पथिक जल्दी-जल्दी चलता है !!"

हो जाए न पथ में रात कहीं, मंजिल भी तो है दूर नहीं!
यह सोच थका दिनका पंथी भी, जल्दी-जल्दी चलता है!
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है!!"

पौन घण्टा दिन रहते-रहते, साढ़े छह बजे हम अपने लक्ष्य-स्थल पर पहुंच ही गए आखिर!

: ६ :

क्यों किसी रहबर से पूछूँ ?

"क्यों किसी रहबर से पूछूँ, अपनी मंजिल का पता !
मौजे दरिया खुद लगा लेती है साहिल का पता !!"

चिनेनी से एक मील, ऊपर सडक पर, पाच-चार दूकानें, एकाध होटल और पाच-चार घर हैं छोटे-मोटे ! जम्मू से कश्मीर को आने-जाने वाली गाडियां रुका-ठहरा ही करती हैं प्राय. इस पड़ाव पर ! रात में हम भी यही आराम से ठहरे थे लकडी के मकान की दूसरी मंजिल में !

सुबह हुआ ! सूरज निकला ! धूप खिली ! निवृत्त हुए और चलने के लिए तैयार हो गए हम कमर कस कर ! सहयात्री युवकों को आवाज दी तो, वे अभी तैयार भी न हो पाए थे ! हम नीचे आ गए सडक पर ! देखा कोई मालिश करा रहा है, कोई नहा रहा है, कोई कपडे बदल रहा है, कोई बिस्तर बांध रहा है, और कोई खड़ा-खडा चाय के साथ रोटी गले से नीचे उतार रहा है ! कहा मैंने —चलो, भई, अब क्या देर-दार है ? क्यों ढील कर रहे हो जान-बूझ कर ? धूप चढ़ रही है ! जल्दी करो !

मेरी बात सुन कर तीन-चार दौड़े! पहुंचे रसोई में! एक हाथ में चाय का गिलास तो, दूसरे में एक-एक रोटी! खड़े खड़े ही, दो-चार ग्रास में चाय-रोटी गले से नीचे उतर गई जल्दी से! यात्रा में ये ही तो मजे हैं! और, झट-पट हो गए तैयार हमारे साथ चलने के लिए अशोककुमार, तरसेमकुमार, वीरकुमार, और सतीशकुमार! पड़ाव से हम लगभग चालीस-पचास कदम ही चले होंगे कि, आगे मिल गया सहयात्री वह बूढ़ा बाबा— जो कल पीछे रह गया था और रात में भी हमारे साथ न मिल पाया था! देखते ही हाथ जोड़ कर बोला: अच्छा, चल दिए? मैं भी आ गया हूं!

हमने 'हां' में जवाब दिया और पीछे वालों की तरफ़ इशारा करके चलने लगे तो, बूढ़ा अपने विनम्र-स्वर में बोला तरसेकुमार से बेटा! अब पीछे मैं कहां—कैसे लौटूंगा! ले, यह गिलास चाय का भरकर यहीं ला दे मुझे!' कलेजा गरम करके आगे बढ़ जाऊंगा! नहीं तो, यह ट्रक हाथ से निकल जाएगा और मैं कल की तरह फिर पिछड़ जाऊंगा!

मैंने भी इशारा किया: भई, बूढ़ा आदमी है! इसकी बात पहले सुनो! हम धीरे-धीरे चलते हैं तुम्हारा इन्तजार करते हुए! बात-की-बात में वह दौड़ कर गया! आया! चाय का गिलास बूढ़े के हाथ में थमाया और जल्दी से दौड़कर हमारे साथ आ मिला! हम ने भी कदम तेजी से आगे बढ़ाया! आज भी, हमारे सामने दो मार्ग थे! एक पक्की सड़क का और दूसरा पहाड़ी पगडंडी से चढाई का! सड़क से कुद ९ मील पड़ता था, तो पगडण्डी के रास्ते सिर्फ चार मील ही! हम चलते-चले और चर्चा करते चले—

ऊपर चढ़ते ही, एक मामूली-सी पगडंडी का निशान मिल गया उसी से चढ़ते चले हम ऊपर। आरंभ में ही कड़ी चढ़ाई से लोहा लेना पड़ा। एक चढ़ाई पूरी करते, दूसरी सामने उभर उठती! फेफड़े फूलने लगे! और, इतने में वह पगडंडी भी लुप्त हो गई! ऊपर आगे नजर उठाकर देखा तो, दूर—बहुत दूर तक चीड़ के मनोरम वृक्ष स्वागत में ग्रीवा उठाए खड़े थे! पगडंडी ग़ायब हो चुकी थी! यों ही, अलल-टप्पू चढ़ते चले! सांस फूलने लगा तो, थोड़ा दम लेने के लिए बैठ गए सब-के-सब चीड़ की ठंडी छाया में। युवक बोले अब आगे पगडंडी तो नजर आती नहीं! रास्ता बतलाने वाला कोई है नहीं! अब पूछें तो किस से पूछें ?

मैंने मुस्कराते हुए कहा अरे! पूछने की क्या बात है! अब, जब चढ़ ही गए ऊपर, तो चढ़ते चलो! अपने-आप मिल जाएगी राह। हमारे अन्दर चलने-चढ़ने की सच्ची लहर है तो, वह अपने-आप ढूंढ लेगी रास्ता और अपने-आप पा लेगी मंजिल का सिरा! मैं तो अब कवि के इस मस्ती-भरे तराने पर मस्त हूं:—

"क्यों किसी रहबर से पूछूं, अपनी मंजिल का पता!
मौजे दरिया ख़ुद लगा लेती है साहिल का पता!!"

थोड़ा दम लिया! साहस बटोरा और फिर चढ़ना शुरू कर दिया! किधर चलें, कुछ पता नहीं! राह किधर— कुछ मालूम नहीं! प्राण-लेवा चढ़ाई! तिस पर चिकनी-सूखी चीड़ की पत्तियों के बिछे बिछौने पर पांव रखें आगे को और फिसल कर आएं पीछे को! कभी इधर, कभी उधर! चढ़ाई के साथ पैरों के दाव-पेंच लड़ाते रहे और अपनी मस्ती में गाते रहे —

"मंज़िल की जुस्तजू से पहले किसे ख़बर थी !
रस्तों के पेच होंगे और रहनुमा न होगा!!"

चढ़ते, फिसलते, ठहरते, दम लेते, चलते हुए पहाडो की ऐसी चोटियों पर पहुच गए, जहा चीड का घना जगल था । चारो तरफ चीड-ही चीड ! वातावरण में गहरा सन्नाटा ! चढ़ाई से जवरदस्त मोर्चा ले रहे थे आज दूर के मुसाफ़िर ! चीड़ की पत्तियो का ऐसा गुदगुदा और चिकना बिस्तर-सा बिछा पड़ा था कि, पैर फिसल-फिसल जाएं ! टिकते ही न थे पैर ! रखें ऊपर को और आएँ नीचे को ! रास्ते का अब भी पता नही लग पा रहा था । किस दिशा में चलना ठीक है—इतना भी समझ नहीं आ रहा था ! फिर भी, हम मस्त-दीवाने अपनी धुन में चलते-चढते जा रहे थे और तरग में गा रहे थे :—

"मंज़िल से भी नावाक़िफ़ हैं, राह से भी आगाह नहीं !
अपनी धुन मे फिर भी रवां हैं, यह भी अजब दीवाने हैं!!"

चढते चले हम ! बढ़ते चले हम ! एक के बाद दूसरी चढ़ाई पार करते चले हम ! लेकिन, आगे चढ़ाई का तो कही अत ही नहीं आ पा रहा था आज ! थक कर चूर-चूर हो गए थे ! आख़िर, चीड के वृक्षों से भरे एक पहाड़ की चोटी पर बैठ गए हम ! चीड की सूखी पत्तियों का क़ुदरती बिछौना ! कोई बैठा ! कोई लेटा ! कोई गा रहा था ! कोई थका हुआ पैर दबा रहा था ! सब के चेहरों पर थकान देखकर मैंने अपनी तरंग-उमंग के मस्ती-भरे स्वर में कहा—"साथियो ! आज हम भी खूब रहे ! सब-के-सब नए रंगरूट—मार्ग से सर्वथा अनभिज्ञ ! राह भूले फिरते हैं

किस को ?

जिन के साथ, मुझे जीवन में,
राष्ट्र के नए तीर्थ,
नांगल-भाखड़ा की सुखद
एवं प्रेरणाप्रद यात्रा
करने का सौभाग्य
मिला !

जीवन के उसी स्नेही साथी,
श्री चन्दन मुनि जी
के
कर-कमलों में
स-हर्ष,
स-स्नेह,
स-विनय,
समर्पित !

—सुरेश मुनि

अपनी बात

त्रिलोक्यां रत्नसूः श्लाघ्या, तस्यां धनपतेर्हरित् !
तत्र गौरीगुरुः शैलो, यत्तस्मिन्नपि मण्डलम् !!

—राजतरंगिणी, २-४३

—तीनों लोक में रत्नगर्भा वसुन्धरा प्रशंसनीय है, पृथ्वीतल पर उत्तर-दिशा प्रशंसनीय है और उत्तर-दिशा में भी पार्वती के जनक हिमालय प्रशंसा के योग्य हैं तथा हिमालय में भी प्रशंसनीय है—कश्मीर !

उसी कश्मीर को, धरती के उसी जाने-माने स्वर्ग को, मुझे भी अपनी आँखों से देखने का अवसर मिला, अपने स्नेही साथी श्री उमेश मुनि जी के साथ ! कश्मीर की उस ठंडी दुनिया में, जो-कुछ देखा, जो-कुछ सुना, जो-कुछ अनुभव किया और उस कठिन-कठोर पद-यात्रा के क्षणों में, हमारे साथ जो-कुछ बीती—उसी की एक हल्की-सी तस्वीर, पाठकों को इन पन्नों में देखने को मिलेगी ! सचमुच, कश्मीर की उस ठंडी मंज़िल में, मेरे सामने प्रकृति के सौन्दर्य का एक नया अध्याय अनावृत हुआ था ! वे दिन याद आते हैं तो, कल्पना-चक्षुओं के समक्ष, रसमय चित्रों की एक पूरी गैलरी के पट खुल जाते हैं ! कश्मीर के सम्बन्ध में, शायद सब से उल्लेखनीय बात यही है कि, वहाँ न जाओ, तब भी चैन नहीं और जाकर लौट आओ, तब भी चैन नहीं ! जो न गए, वे चाह में अकुलाते हैं और जो हो आए, वे याद में छटपटाते हैं ! वह सब प्रकृति का वैभव याद आता है तो, एक बार फिर, उस रमणीय-स्थली को देखने के लिए, मन अकुला उठता है !

अस्तु, यात्रा के सम्बन्ध में, मुझे जो-कुछ कहना था, वह सब इन पन्नों में खूब खुल कर कह गया हूँ मैं ! अब और अधिक कहना भी क्या है ? अब तो केवल, मेरे स्मृति-तट पर जो बातें और चेहरे उभर रहे हैं,

वापस लौट रहा है। हमारे और लोग पीछे आ रहे हैं भेड-बकरी और पशु लेकर। आज हम यहीं ठहरेंगे! यह कह कर वे महिलाएं नीचे नाले में उतर गईं और मैं आगे बढ़ चला! कितना साहस था उन कश्मीरी महिलाओं में, किसी अपरिचित व्यक्ति से भी बात-चीत करने का!

मग्गरकोट हम दो रात ठहरे! और फिर, आगे की मंजिल पर चल दिए! आज जम्मू के शादी लाल जी, एक नए यात्री आ मिले थे हमारे साथ। आज हम पहाडों की छाया-छाया में चले। इधर भी पर्वतों की ऊँची चोटियाँ और उधर भी उत्तुंग गिरि-शिखर! बीच में बह रहा था बानिहाल का खूनी नाला, कल-कल, छल-छल करता हुआ! नाले के सहारे-सहारे सडक से हम चल रहे थे! दोनों ओर ऊंची-ऊँची चोटियों पर गर्वीले मानव ने बस्तियाँ बसा रखी हैं! अपने जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कैसे ये लोग नीचे आते होंगे— सोचकर हैरानी हो रही थी! रास्ते में सोहनलाल डोगरा और शादी लाल ने आज खूब तराने सुनाए चलते-चलते! उत्साह और संगीत की उमंगों में, ग्यारह मील की मंजिल का पता भी न लगा! साढे ग्यारह बजे हम बानिहाल पहुँच गए!

यहाँ पर भी, ऊधमपुर के महाजनों के दस-बारह घर हैं! दोपहर को मैं आहार के लिए घरों में गया तो, दूकानों के अन्दर से हो कर जाना पडा! आगे दूकानें हैं और उनके पीछे ही घर हैं! उन महाजनों की दूकानों पर मैंने सरे आम अडे रखे देखे। आलू और प्याज की तरह अडे भी टोकरियों में भरे रखे थे बेचने के लिए! देखकर बडी हैरानी हुई। वह दृश्य मेरे मन के कैमरे के सामने घूमता रहा सारे दिन! रात को सत्संग लगा! कथा-वार्ता का प्रसङ्ग चला। और क्या कथा सुनानी थी उन्हें? यही अहिंसा की, दया की,

कर्तव्य की प्रेरणा देनी थी। जैसी भूख हो, वैसी ही तो खूराक देनी चाहिए न। कथा के बीच में मैंने कहा : हम आप के बानिहाल में पहली बार ही आए हैं। पर, आते ही हमने यहाँ एक अजीब चीज देखी। लाला मनीराम जी के साथ, दोपहर को आहार के लिए गया तो, आप लोगो की दूकानो पर, दूसरी चीजो के साथ, एक गोल-मोल दुनिया भी देखी मैंने! क्यो, समझ गए न आप मेरी बात ?

कुछ सकुचाते हुए बोले जी हाँ, समझ गए हैं।

मैंने पूछा : एक मुसलमान की दूकान पर भी वही अभक्ष्य वस्तु बिकती है और एक हिन्दू की दूकान पर भी वही चीज बिकती है तो, दोनो में फर्क क्या रहा ?

सब का एक स्वर था कुछ भी नहीं!

मैंने आगे प्रश्न किया . क्या इस चीज के बिना आप की दूकानदारी और आप की तथा आपके परिवार की जिन्दगी नहीं चल सकती !

बोले क्यो नहीं! इस के बिना क्या फर्क पड़ता है! बड़ी अच्छी तरह चल सकता है सब-कुछ!

फिर पूछा मैंने आप लोग सत्सग में कुछ लेने के लिए आए हैं या खोने के लिए ?

आवाज आई : महाराज! कुछ लेने की इच्छा से ही आए हैं ?

मैंने जोरदार शब्दो में कहा : तो आज हमारी एक बात पल्ले बाध कर ले जाओ। आज से अपनी दूकानों पर ये अंडे मत रखना! हम जैन सत और तो कुछ भेंट पूजा लेते नहीं। पर, आप खुशी के साथ, यह त्याग - निष्ठा की भेंट देंगे तो, उसे सहर्ष स्वीकार करेंगे हम! हमारा दिल बडा खुश होगा और आप के जीवन का सुधार होगा!

मेरी बात सटीक बैठ गई उनकी मति-गति में। सब हाथ उठा कर कहने लगे - महाराज! भग वान् को और आप की साक्षी से, हम सच कहते हैं कि, आज से यह चीजें हम बिलकुल नहीं रखेंगे अपनी दूकानो पर। आप की प्रेरणा से आज हमारा मन ही बदल गया है। आपने बडा उपकार किया हम लोगो पर।

मैंने गद्गद-भाव से कहा. हमारी अन्तरात्मा अत्यन्त प्रसन्न है आपके इस शुभ सकल्प से! हमारा यहाँ आना भी सफल हुआ! हमारा कथा करना भी सफल रहा! आप का कथा सुनना भी सफल रहा! बानिहाल हमें याद रहेगा।

कथा का खूब ठाठ लगा वहाँ पर! रात को साढे दस बजे तक महफिल जमी रही! कितने मधुर थे जीवन के वह क्षण!

: १४ :

ज़िन्दगी कठिनाइयों का रास्ता है !

"जिन्दगी कठिनाइयों का रास्ता है,
झेलते ही झेलते आसान होगा !
देखकर डरना नहीं तूफान चलते,
एक दिन तूफान ही जलयान होगा !!"

२८ अप्रैल का मंगल-प्रभात ! पीर-पंजाल को पार करने का एक महासंकल्प लेकर, सात बजे चल पड़ा हमारा काफला अपनी मंजिल पर ! एक-डेढ़ मील चले तो, देखा : वही पुराने परिचित जम्मू-कश्मीर असेंबली के स्पीकर श्री असदुल्ला मीर सड़क पर ही खड़े हैं, स्वागत-सत्कार करने के लिए, अपने संगी-साथियों के साथ ! देखते ही बोले : मैं तो यहां आध घण्टे से खड़ा हूं, आप की इन्तजार में ! मुझे तो सात बजे की सूचना मिली थी, आप के आने की, इन नौजवानों से !

मैंने मुस्कराते हुए कहा : मीर साहब ! सफर में सब को साथ लेकर चलना पड़ता है ! इन नौजवानों को तैयार होते-होते कुछ देर लग गई। और फिर, यह दूर के मुसाफ़िर अपनी मौज-

मस्ती की बहार में चलते हैं ! पैदल सफर का यही तो आनन्द है, कहीं देर, कहीं सवेर !

एक पलास्टिक की तश्तरी में कुछ बादाम और बीकानेरी मिश्री पेश करते हुए, मीर साहब अपनी विनम्र-मुद्रा में बोले : अच्छा, यह स्वीकार कीजिए ! और तो हम से आप कुछ लेते नहीं !

अपनी मर्यादा की परम्परा के अनुसार, कुछ थोडा-बहुत स्वीकार करते हुए, विनोद की भाषा में मैंने कहा —वाह ! और क्या चाहिए मीर साहब ? यह तो एक सुन्दर उपहार मिल गया, हम यात्रियो को, मार्ग चलते-चलते !

मीर साहब अपनी कार की तरफ इशारा करते हुए बोले गाडी तैयार खडी है ! पर गाडी में तो आप बैठते नहीं ! और बतलाइए, क्या सेवा करू आप की ?

"आप का यह हार्दिक स्नेह-सद्भाव और प्रेम का बरताव क्या कुछ कम सेवा है ! इन्सान के दिल की प्रेम-तरग के आगे, और सेवाए फीकी पड जाती हैं सब"—मैंने अपनी मस्ती की तरग में कहा !

लगभग दो-तीन फर्लांग तक मीर साहब बात-चीत करते हुए, साथ-साथ पैदल चलते रहे, कदम-से-कदम मिला कर ! उन को वापस किया और हम तेजी के साथ आगे बढ़ चले ! लगभग तीन मील सडक पर चलने के बाद, हमने पीर-पजाल की पर्वत-श्रेणी पर चढ़ना शुरू किया ! चढ़ाई खूब थी, पर उत्साह की अगडाइयां लेता हुआ मन, कदमो को उठाए लिए जा रहा था ! अब हम जमीन से उठ कर आसमान की तरफ जा रहे थे ! और, युवक अपनी मधुर स्वर-लहरी में गा रहे थे :—

"असी रहन वाले मैदान दे, ते सानूं चढ़ने पये पहाड़ !
असी पैदल आए जम्मूओं, ते असां जाना ते कश्मीर !
जित्थे देखे बूटे चिनार दे, ते नाले ठंडा-ठंडा नीर !
असी चल्ले अज्ज बनिहाल तों, ते जीत लित्ता ए पीर !"

युवकों को यह पंजाबी स्वर-लहरी, रोम-रोम में उत्साह का रंग भर रही थी, और हमारी कठिनाई को आसान बना रही थी। हिम्मत और हौसले के आगे, मुश्किल-से-मुश्किल चीज भी आसानी से बदल जाती है—इस तथ्य से कौन इनकार कर सकता है ? शायर भी तो मेरे स्वर-से-स्वर मिला कर गा रहा है :—

"आसान नजर आए, हर इक मुश्किले दुनिया !
दे साथ अगर हिम्मते मरदाना किसी का !!"

उत्साह की तरंगों में, पर्वत-माला को पार करते हुए, हम नीचे की सुरंग के पास पहुंच गए ! एक चहल-पहल का वातावरण था वहां पर ! सैकड़ों आदमी, मशीनों के साथ, बड़ी तत्परता से निर्माण-कार्य में जुटे थे ! "इजाजत मिलने पर, घण्टे भर में पीर के पार पहुंच जाएँगे—यह प्रसन्न विचार मन में घूम रहा था ! मीर साहब के आदमियों की पीर पर कुछ भी पेश नहीं चली थी ! उधर, सुरंग से गुजरने के लिए, बानिहाल के दफ्तर में भी कोशिश की गई थी। दफ्तर के अधिकारियों ने साफ कह दिया था—"अगर कोई साधारण आदमी होता तो, हम उसे इजाजत दे देते ! कोई दुर्घटना भी हो जाती तो, कोई नहीं पूछता हमें ! लेकिन, यह महात्मा - संत तो, समाज की एक बड़ी हस्ती हैं ! जिन्दगी इनकी

बड़ी क़ीमती है, समाज और देश के लिए ! अगर कोई खतरे का काम हो गया तो, हमारा क्या होगा? सरकार हमें पूछेगी तो, हम सरकार को क्या जवाब देंगे !"

अधिकारियों की इस बात ने, सब के मुँह पर ताले डाल दिए थे ! फिर भी, मनुष्य आशा पर चलता है ! और, इसी आशा के प्रकाश में, हम टन्नल के द्वार पर, एक इंजिनियर से मिले और सारी स्थिति-परिस्थिति की तस्वीर उसके सामने रखी ! बड़ी धीरज के साथ उसने हमारी बात सुनी ! थोड़ा विचार कर और हमारी तरफ़ देखकर, वह बोला : सुरंग से जाने में तो आप लोगों को बड़ी दिक्कत रहेगी ! अच्छा, आप पैदल ही चलते हैं और सुरंग से ही जाना चाहते हैं तो, जाइए, जल्दी से पार हो जाइए !

सब के तन-मन प्रसन्नता से खिल उठे ! और, सुरंग में प्रवेश कर गए हम, बड़ी शीघ्रता से ! बीस-तीस क़दम ही चले होंगे कि, पीछे से एक व्यक्ति दौड़ता हुआ आया और बोला : आप आगे मत जाइए ! वापस लौट आइए ! बड़ा साहब कहता है, आगे बड़ा खतरा है ! बीच-बीच में, बम रखे हुए हैं, पहाड़ की चट्टानें तोड़ने के लिए आज ! न जाने, वे कब फट जाएँ और जिन्दगी खतरे में पड़ जाए ! इसलिए, आगे मत बढ़िए ! वापस लौट जाइए !

मैंने कहा : लो भई, देख लो, तक़दीर की ख़ूबी ! कमन्द कहाँ टूटी है ! बनी-बनाई बात बिगड़ गई यह तो !

युवकों ने कहा : सब से बड़े इंजिनियर से भी बात कर लें ! क्या पता, इजाजत मिल ही जाए ! आप भी साथ पधारिए ! आप को देख कर, शायद उस का मन ही बदल जाए !

मैंने कहा : बस, किस के पास जाना है ? अब तो अपनी मुश्किल को अपने-आप ही हल करना होगा ! दूसरों से अब कुछ नहीं कहना-सुनना, अपनी मुश्किल को आसान करने के लिए ! अपनेराम तो अब शायर की इस लहर पर मस्त हैं :—

'यह मुद्दत हस्ती की आखिर, यों भी तो गुजर ही जाएगी !
दो दिन के लिए मैं किस से कहूँ,आसान मेरी मुश्किल कर दे!!"

इसलिए, जवानो ! पीर-पजाल की चोटियों को अपने पैरों से नापने के सिवा, अब दूसरा चारा कोई नजर नहीं आता ! देर लगाने से क्या फायदा, इधर-उधर ! चलो, जल्दी से चढ़ चलें ऊपर !

एक युवक बोला : इतनी विकट घाटियों और ऊँची चोटियों को कैसे पार करेंगे आप ? क्या मंजिल पर पहुंच जाएँगे आज, ऐसे चल कर ?

मैंने दृढ़ता के स्वर में कहा : अरे, जब तक यहाँ खड़े हैं; तभी तक ये चोटियाँ ऊँची नजर आ रही हैं ! हिम्मत और साहस से क़दम उठाएँगे तो, ये चोटियाँ नीचे पाएँगी और हम इनके ऊपर खड़े, मुस्कराते नजर आएँगे ! कठिनाइयों से भरी एक लम्बी मंजिल का नाम ही तो जिन्दगी है ! लेकिन, मन में साहस की विद्युत्-रेखाओं के चमकते ही, आधी मंजिल रह जाती है यात्री की— यह एक वज्र-तथ्य है ! कवि का यह स्वर भी तो यही संकेत कर रहा है :—

"आगे बढ़कर आधे पथ में, मंजिल खुद राही को ढूँढे !
साहस पैर बढ़ा देवे यदि, पथ-निश्चय होने से पहले !!"

और, एक दूसरा कवि भी तो इसी तरंग में गा रहा है :—

"जिन्दगी कठिनाइयो का रास्ता है,
झेलते-ही-झेलते आसान होगा !
देख कर डरना नहीं तूफ़ान चलते,
एक दिन तूफ़ान ही जलयान होगा !!"

अब, साहस और उत्साह की एक नयी अगडाई लेकर, चढ़ चला हमारा काफला पीर की चोटियों पर ! थोड़ा आगे बढ़े तो, बिल्कुल खडी और प्राण-लेवा चढाई थी ! पगडडी भी बहुत छोटी और विकट बन गई थी ! कुछ जवान और साथी श्री उमेश मुनि जी, आगे बढ गए और कुछ मेरे साथ चल रहे थे धीरे-धीरे ! चट्टानों से भरी पगडंडी पर चढते हुए, मेरे पैर की पट्टी खुल गई ! बा० तिलकराज ने नई पट्टी बाध दी ! धीरे-धीरे उस विकट घाटी को पार कर रहा था मैं, साथी नौजवानो के साथ ! इसी बीच, पीछे से 'हातो' लोगों की एक टोली आ गई, तेज रफ्तार से ! कश्मीरी लोग 'हातो' कहलाते हैं ! मुझे धीरे-धीरे चढते देख कर, वे साथी नौजवानो से बोले : अरे, इस बाबा के बस का काम नहीं है, पीर पर चढ़ना ! बाबा को तो वापस ही ले जाओ ! ऐसे भी कहीं रास्ता तय होता है कहीं ? यह पीर की मजिल तो देखो, यो पार की जाती है ! यह कहकर वे तेजी के साथ आगे बढ़ गए ! रोजाना आने-जाने के कारण, वे उस चढाई के काफी अभ्यस्त हो गए थे !

मैंने बात सुनी और पी गया ! और, अपनी धुन में चढ़ता रहा ! मन सोच रहा था : धीरे-धीरे मन्थर-गति से भी तो, विकट-से-विकट

उन्हें अभिव्यक्ति का रूप दे देना, मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ! मेरी इस कश्मीर-यात्रा को सरल एवं सुविधा-जनक बनाने के लिए, जम्मू के 'श्री-संघ' और श्रीनगर के 'श्री-संघ' ने, जो सेवा-साधन जुटाए तथा जो अपनी असीम भाव-भक्ति का सक्रिय परिचय दिया, उस की मेरे मन पर अमिट छाप है! इन दोनों संघों की भक्ति-निष्ठा को, मैं कैसे भूल सकता हूँ, जीवन में? और, इस लम्बी-तथा थका देने वाली मंजिल में, कदम-से-क़दम मिला कर चलने वाले, जम्मू के उत्साही युवक-वर्ग के साथ, मैंने जो दिन बिताए, वे भी सदा मेरे स्मृति-पथ पर नाचते रहेंगे! कठिनाइयों के दौर में भी, उन युवकों के मुस्कान-भरे चेहरे, मुझे सदा याद रहेंगे! बा० सोहनलाल डोगरा की सेवा-भावना भी, इस यात्रा की सुखद याद दिलाती रहेगी!

इस के अतिरिक्त, जम्मू-बिरादरी के स्फूर्तिशील एवं कर्मठ समाज-सेवी बा० त्रिलोकचन्द्र जी तो, यात्रा के क्षणों में भी, हमारे साथ अपना सजीव सम्पर्क बनाए रहे हैं! हमारी यात्रा को सफल बनाने में, उन का बड़ा हाथ रहा है! उन का क्रियात्मक सहयोग, मेरे लिए गौरव की वस्तु है! और, मेरी कश्मीर-यात्रा की उन सुखद तथा नयनाभिराम झाँकियों को साकार करने में, जम्मू के कुछ उदार - चेता महानुभावों तथा 'श्राविका-सन्मति-सदन' का जो सक्रिय योगदान रहा है, वह मेरी स्मृति-शाला में, सदा उभार लेता रहेगा—ऐसा विचार है!

प्राकृतिक-सुषमा के धनी कश्मीर में, पग-पग पर जो प्राकृतिक-सौष्ठव बिखरा पड़ा है, उस की एक हल्की-सी झलक, अगर पाठकों को, इन पन्नों में मिल सकी तो, मैं अपना श्रम सफल समझूँगा!

१०-११-५८
दीप-माला
जैन-उपाश्रय : जम्मू
(कश्मीर)

—सुरेश मुनि

मंजिल पार कर ली जाती है ! कवि की यह अन्तर्वाणी मुझे एक नया बल प्रदान कर रही थी :—

"चाल धीमी है तो क्या, आएगी मंजिल जरूर !
खौफ़ गिर जाने का भी तो तेज़ रफ़्तारी मे है !!"

काफी ऊंचाई पर पहुच कर, क्या देखता हू कि, 'हातो' लोगो की वह टोली, बराबर के एक सूखे नाले में लेट लगा रही है, आराम से ! हम अपनी मन्थर-गति से चढते रहे और उस टोली से पहले पीर की आखरी चोटी पर पहुच गए ! अब हमारी मंजिल की चढाई खत्म थी ! पसीने सुखाने और थोडा दम लेने के लिए, हम बैठे ही थे कि, 'हातो' लोगों की वह टोली भी आ पहुची। हमें देख कर बोले अरे ! बाबा तो बडा हिम्मती निकला ! हम से पहले ऊपर पहुँच गया !

उन की बात पर मैं मुस्कराया और बचपन में पढी हुई कछुए और ख़रगोश की वह कहानी याद हो आई, जिस में एक कछुए और खरगोश ने शर्त लगा कर, एक लम्बी दौड लगाई थी। खरगोश छलागें भरता हुआ, आगे निकल गया था, और आगे ठडी छाया में पड़ कर सो गया था ! और, कछुआ अपनी मन्थर-गति से चलता हुआ, ख़रगोश से पहले अपनी मंजिल पर पहुंच गया था !

खैर, अब हम ऊपर की सुरंग के द्वार पर पहुंच गए। सुरंग के मुख-द्वार पर लिखा था— 8989 यानी समुद्र की सतह से ८९८९ फीट ऊंचे गिरि-शिखर पर खडे थे अब हम ! सुरग के दोनों ओर बन्दूकधारी सैनिको का पहरा था ! इधर के सैनिक ने सीटी बजाई और उधर का सैनिक सतर्क एव सावधान हो गया ! गाडियां आनी-जानी बंद हो गई ! हम ने झट से सुरग में प्रवेश किया ! पानी

ऊपर से टपक रहा था जगह-जगह और सडक कीचड से भरी थी! बर्फानी ठडी हवा से शरीर का रोम-रोम थरथरा उठा! जल्दी ही हम सुरग के परले पार पहुच गए! सुरग के उधर बर्फ का ही पुल बना हुआ था! इधर-तिधर पहाडों पर बर्फ बिछी पडी थी! दूर-दूर तक पहाड़ों की बर्फीली - रुपहली चोटिया नजर आ रही थीं! देख कर मन मस्त हो उठा! सारी थकावट तिरोहित हो गई, उस बर्फानी दुनिया की उस नयी-निराली दृश्य-लीला को देख कर! थोडा आगे बढ़ कर, हम सब बैठ गए! आहार-पानी किया! निवृत्त हुए! और, चल दिए!

दस बीस कदम चल कर नौजवान कहने लगे : बस, यही पगडंडी है! अब यहां से नीचे उतार-ही-उतार है! अब तक चढ़े थे, अब नीचे उतर चलिए! उस विकट उतराई को देखते ही डर लगता था! 'पत्नी-टॉप' से बटौत तक की भयकर उतराई भी, इसके आगे कोई मूल्य-महत्त्व नहीं रखती थी! क्षण-क्षण में मोड़ खाती हुई छोटी-सी पगडडी! बारिश होने से फिसलन का क्या ठिकाना! लेकिन, यह दूर के मुसाफिर तो अपनी धुन के पक्के थे! आगे देखा, न पीछे! जोश में भी होश की दवा लेकर, उतर पडे, पगडडी के रस्ते! मस्ती के साथ उतरते-चलते, हम उस नीचे की सुरग के दूसरे मुख-द्वार पर पहुच गए, जिस में से पार होने के लिए, उधर इजाजत नहीं मिल सकी थी, और हमारे दिल के अरमान दिल ही में रह गए थे! सुरंग के इधर भी सैकडो मजदूर काम में लगे हुए थे! पूछने पर मालूम हुआ कि, सुरग में से हो कर कुल डेढ़-पौने दो मील का रास्ता था! मीलों के चक्कर और प्राण-लेवा चढ़ाई से बच जाते! पर, अब इन बातो का क्या मूल्य था? वेरीनाग, अभी तीन मील आगे था! तीन मील तक और नीचे-ही-नीचे उतार

था ! उतर चले हम पगडंडी से ! रास्ते में एक जगह भूल-भटक गए ! लम्बे सफर में अक्सर ऐसा होता ही है ! हैरान-परेशान भी खब हुए ! पर, घुमक्कड़ और फक्कड़ इन बातों और आघातों से घबराते हैं क्या कभी ? मंजिल की तरफ कदम बढ़ते ही रहे ! शरीर थक कर चूर-चूर हो गए थे ! कदम जरा आहिस्ता उठ रहे थे अब ! ऐसा सन्देह हो रहा था कि, मंजिल के नजदीक पहुँच कर भी, हम मंजिल से दूर हो रहे हैं ! किसी मनचले शायर की यह बात सोलहों आने सच हो रही थी .—

"सामने मंजिल है और आहिस्ता उठते हैं कदम !
पास आ कर हो रहे हैं दूर फिर मंजिल से हम !!

थोड़ा आगे बढ़े तो, सड़क मिल गई घूमती-फिरती हुई ! मील के पत्थर पर लिखा था—वेरीनाग से बनिहाल तीस मील ! ओफ़ ! कितनी लम्बी और विकट घाटियां लांघ दी थी आज हम ने ?

ज्यों-त्यों करके, पांच बजे वेरनाग के डाक-बंगले में पहुंच गए ! सुबह के चले शामको मंजिल पर पहुंचे ! कितनी विकट पथ - यात्रा था वह !

ऊपर से टपक रहा था जगह-जगह और सडक कीचड से भरी थी! बर्फानी ठडी हवा से शरीर का रोम-रोम थरथरा उठा! जल्दी ही हम सुरग के परले पार पहुच गए! सुरग के उधर बर्फ का ही पुल बना हुआ था! इधर-तिधर पहाडो पर बर्फ बिछी पडी थी! दूर दूर तक पहाड़ों की बर्फीली - रुपहली चोटिया नजर आ रही थीं! देख कर मन मस्त हो उठा! सारी थकावट तिरोहित हो गई, उस बर्फानी दुनिया की उस नयी-निराली दृश्य-लीला को देख कर! थोडा आगे बढ़ कर, हम सब बैठ गए! आहार-पानी किया! निवृत्त हुए! और, चल दिए!

दस बीस कदम चल कर नौजवान कहने लगे : बस, यही पगडडी है! अब यहा से नीचे उतार-ही-उतार है! अब तक चढ़े थे, अब नीचे उतर चलिए! उस विकट उतराई को देखते ही डर लगता था! 'पत्नी-टॉप' से बटौत तक की भयकर उतराई भी, इसके आगे कोई मूल्य-महत्त्व नहीं रखती थी! क्षण-क्षण में मोड खाती हुई छोटी-सी पगडडी! बारिश होने से फिसलन का क्या ठिकाना! लेकिन, यह दूर के मुसाफिर तो अपनी धुन के पक्के थे! आगे देखा, न पीछे! जोश में भी होश की दवा लेकर, उतर पडे, पगडडी के रस्ते! मस्ती के साथ उतरते-चलते, हम उस नीचे की सुरग के दूसरे मुख-द्वार पर पहुच गए; जिस में से पार होने के लिए, उधर इजाजत नहीं मिल सकी थी, और हमारे दिल के अरमान दिल ही में रह गए थे! सुरग के इधर भी सैकडों मजदूर काम में लगे हुए थे! पूछने पर मालूम हुआ कि, सुरग में से हो कर कुल डेढ़-पौने दो मील का रास्ता था! मीलों के चक्कर और प्राण-लेवा चढ़ाई से बच जाते! पर, अब इन बातों का क्या मूल्य था? वेरीनाग, अभी तीन मील आगे था! तीन मील तक और नीचे-ही-नीचे उतार

था। उतरे चले हम पगडंडी से ! रास्ते में एक जगह भूल-भटक गए ! लम्बे सफर में अक्सर ऐसा होता ही है। हैरान-परेशान भी खब हुए ! पर, घुमक्कड़ और फक्कड़ इन बातों और आघातों से घबराते हैं क्या कभी ? मंजिल की तरफ कदम बढ़ते ही रहे। शरीर थक कर चूर-चूर हो गए थे। कदम जरा आहिस्ता उठ रहे थे अब। ऐसा सन्देह हो रहा था कि, मंज़िल के नजदीक पहुंच कर भी, हम मंजिल से दूर हो रहे हैं। किसी मनचले शायर की यह बात सोलहों आने सच हो रही थी।—

"सामने मंज़िल है और आहिस्ता उठते हैं क़दम !
पास आ कर हो रहे हैं दूर फिर मंज़िल से हम !!

थोड़ा आगे बढ़े तो, सड़क मिल गई घूमती-फिरती हुई ! मील के पत्थर पर लिखा था—वेरीनाग से बनिहाल तीस मील ! ओफ़ ! कितनी लम्बी और विकट घाटियां लांघ दी थीं आज हम ने ?

ज्यों-त्यों करके, पांच बजे वेरनाग के डाक-बंगले में पहुंच गए ! सुबह के चले शाम को मंजिल पर पहुंचे ! कितनी विकट पद - यात्रा था वह !

: १५ :

निर्झर कहता है, बढ़े चलो !

"निर्झर कहता है बढ़े चलो, तुम पीछे मत देखो मुड़ कर !
यौवन कहता है, बढ़े चलो, सोचो मत, क्या होगा चल कर!!"

वेरनाग, [वेरीनाग] पीर-पंजाल पहाड़ के दामन में वितस्ता (झेलम) नदी का मूल-स्रोत है ! कश्मीर का सब से विशाल एवं प्रसिद्ध चश्मा माना जाता है यह ! वेर या वेरी का अर्थ है, श्रेष्ठ और कश्मीरी भाषा में नाग का अर्थ है, चश्मा ! वेरीनाग का मूलार्थ हुआ—श्रेष्ठ चश्मा ! चश्में के बाहर दीवार पर लगे शिलालेख के इस फ़ारसी-वाक्य से भी यही अर्थ झलकता है:—

"जीन आबशार याफ़्ता कश्मीर आबरूए !!"

—यह चश्मा कश्मीर की इज्जत है !

इस चश्मे के महत्त्व को जहाँगीर ने आँका-पहचाना था ! जहाँगीर ने इस की हालत का सुधार कराया, इसके चारों ओर नक्काशी किए हुए पत्थरों का अष्ट-कोण तालाब बनवाया और पास ही एक उद्यान लगवाया ! इस का निर्माण १६९० ई० में हुआ था ! जहांगीर की मृत्यु के बाद, उसके बेटे शाहजहाँ ने, यहाँ से एक

नहर निकाली, जो बाग के बीचो-बीच गुज़रती है। चश्मे के गिर्द की दीवार पर, इसकी प्रशसा में फारसी-कविताए लिखी हुई हैं, जिन्हें पढ़ने से इसके निर्माण-काल और इसके महत्त्व का ठीक-ठीक पता चलता है!

यह चश्मा ५४ फुट गहरा है! १८-१८ फुट पर तीन, जगह पैडियां लगी हैं इस में! इस के उद्‌गम-स्थल पर नीला-नीला पानी बिल्कुल स्थिर-सा लगता है गहराई के कारण! परन्तु, चश्मे से बाहर पानी अत्यन्त वेग से बहता है, तीन धाराओं के रूप में, तीन दिशाओं की ओर! इस वेगशील निर्झर को देखकर, हिन्दी के प्रसिद्ध कवि श्री आरसी-प्रसाद सिंह की 'जीवन-निर्झर' कविता स्मृति में उभर आई —

"यह जीवन क्या है, निर्झर है, मस्ती ही इसका पानी है!
सुख-दुःख के दोनों तीरों से चल रहा चाल मनमानी है!!
निर्झर में गति है, यौवन है, वह आगे बढ़ता जाता है!
धुन एक सिर्फ़ है चलने की, अपनी मस्ती मे जाता हैं!!
निर्झर मे गति है, जीवन है, रुक जाएगी यह गति जिसदिन!
उसदिन मर जाएगा मानव,जग-दुर्दिन की घड़ियां गिन-गिन!!
निर्झर कहता है, बढ़े चलो, तुम पीछे मत देखो मुड़कर!
यौवन कहता है, बढ़े चलो, सोचो मत, क्या होगा चलकर!!
चलना है, केवल चलना है, जीवन चलता ही रहता है!
मर जाना है, रुक जाना ही, निर्झर यह झर कर कहता है!!"

वेरीनाग का सरकारी डाक-बगला भी, नए ढंग का अभी नया ही

बना है ! बंगले के आमने-सामने बगीचे को नए सिरे से सजाया-संवारा जा रहा है ! इस स्थान को महत्त्व देने के लिए, योजना कार्यान्वित हो रही है ! इस योजना के बारे में, देख-भाल करने के लिए ही, कश्मीर के प्रधान-मन्त्री बख्शी गुलाम मुहम्मद, अगले दिन यहाँ दौरे पर आए थे ! उन के आते ही बगीचे के मजदूरों और आस-पास की बस्ती वालों ने, उन के जय-जयकारों से वेरीनाग के बाग़ और पहाड़ को गुंजा दिया ! हमारा पता लगते ही, भीड़ में से निकल कर, बख्शी जी अकेले ही, ऊपर हमारे पास आए ! विनीत-भाव से नमस्कार किया और बैठ गए ! पांच-सात मिनिट वार्तालाप चलता रहा ! बहुत जल्दी में थे !

वेरीनाग में, पंडित जगन्नाथ जी वैली, हमारे अत्यन्त निकट के सम्पर्क में रहे ! बड़े ही भावुक, शिष्ट, विनम्र, सेवाभावी, प्रतिष्ठित और सम्पत्तिशाली कश्मीरी ब्राह्मण हैं ! आजीवन अविवाहित रहने का उन्होंने महान् संकल्प किया हुआ है ! धार्मिक-वृत्ति और भक्ति-भाव की प्रवृत्ति में रंगे-रमे रहते हैं अधिकतर ! साधु-सन्तों की सेवा-शुश्रूषा का अवसर पाकर भाव-विभोर हो उठते हैं ! आहार के समय आते, साथ-साथ ले जाते, भक्ति-भावना से स्वयं आहार-पानी बहराते, आनन्द की मस्ती में झूम जाते और काफी दूर तक छोड़ने आते ! उनकी भाव-लहरी को देखकर, हृदय गद्‌गद हो जाता था ! अत्यन्त आग्रह और स्नेह के साथ, हमारे सहयात्री युवकों को अपने घर दावत देकर, उनका रोम-रोम पुलकित हो उठा था !

हमारे पास वह दिन में भी आते ! और, रात में भी आते ! धर्म-चर्चा में खूब रस लिया उन्होंने ! जिज्ञासा-भाव से उन्हों ने अनेक

अनुक्रम

प्रश्न पूछे और यथासम्भव हमने उनके मन का समाधान करने का प्रयत्न किया ! सक्षेप में, कुछ प्रश्नोत्तरो की झाँकी इस प्रकार है :—

१. प्रश्न : जैन-धर्म का मुख्य सिद्धान्त क्या है ?

उत्तर : जैन-धर्म का मुख्य सिद्धान्त अहिंसा है ! **"अहिंसा परमो धर्मः"** यह महावाक्य जैन-धर्म का प्राण है ! जैन-धर्म की घोषणा है : ससार के सब जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई भी नहीं चाहता —

"सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं, न मरिज्जिउं ! "

इसलिए, खुद जीओ और दूसरो को जीने दो ! इतना ही नहीं, दूसरों को जिन्दा रहने में मदद करो ! किसी भी प्राणी की हिंसा न करना ही ज्ञानी होने का सार है ! अहिंसा-सिद्धान्त ही सर्व-श्रेष्ठ है, विज्ञान केवल इतना ही है :—

"एवं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ किंचणं !
अहिंसा-समयं चेव, एयावंतं वियाणिया !!"

२. प्रश्न : अहिंसा की बात तो प्रत्येक धर्म में कही गई है ! फिर, जैन-धर्म की इस में क्या विशेषता रही ?

उत्तर : दूसरे धर्मों में भी थोड़े-बहुत अंश में अहिंसा की बात मिल जाती है अवश्य; परन्तु, अहिंसा पर जितना बल जैन-धर्म ने दिया है, उस का शतांश भी अन्यत्र देखने को नहीं मिलता ! जैन-धर्म ने अहिंसा के विषय में अत्यन्त विशद तथा सूक्ष्म चिन्तन किया है। अहिंसा का इतना सूक्ष्म मन्थन, हमें कहीं भी प्राप्त नहीं होता ! जैन-धर्म का तो मूलाधार ही अहिंसा है ! वहां हिंसा को आचार-विचार के लिए, धर्म के लिए या मिथ्या-धारणा के लिए, जरा भी स्थान

नहीं है। किन्तु, दूसरी जगह, हिंसा को खुले आम प्रोत्साहन दिया गया है, धर्म के नाम पर ! एक दिन यज्ञवादियो ने "वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति"—का नारा बुलन्द करके, हिंसा पर अहिंसा का रग चढ़ाने का प्रयत्न किया और नग्न-रूप में हिंसा की पूजा की ! धर्म की ओट में, यह हिंसा का नंगा नाच था! अहिंसा-वादियो की ओर से, जब पशु-हिंसा का प्रबल विरोध किया जा रहा था, तो यज्ञवादी 'यज्ञार्थं पशव: स्रष्टा:' का डिडिमनाद करके, हिंसा का खुल्लम-खुल्ला आघोष कर रहे थे ! मनुस्मृति उठा कर देख लीजिए, वहाँ श्राद्ध के नाम पर हिंसा का नग्न-विधान आप को खूब मिलेगा !

परन्तु, जैन धर्म के विधि - विधानो और धार्मिक - अनुष्ठानों में, आप को कहीं भी हिंसा के दर्शन नहीं होगे ! अहिंसा के नाम पर, हिंसा की बात, जन-मन में उतारने की प्रेरणा वहाँ नाम को भी नहीं पाएगी ! अहिंसा के विषय में जैन - धर्म की सूक्ष्मता, व्यापकता, यथार्थता तथा विशेषता को दूसरा कौन पकड सकता है ?

३. प्रश्न : जैन-धर्म के अनुसार, भगवत्प्राप्ति का सरल उपाय क्या है ?

उत्तर : जैन-धर्म 'भगवत्प्राप्ति' की भावना में विश्वास नहीं रखता ! भगवान्, भगवान् रहे और भक्त, भक्त की भूमिका पर खडा-खडा भगवान् की झाकी देखा करे — जैन - धर्म की दृष्टि से यह विचार तथ्यात्मक नहीं है ! जैन - धर्म तो भक्त से स्वय भगवान् बनने की विशुद्ध-भावना पर टिका हुआ है ! उस का मन्तव्य है कि, भगवान् की तरफ मत दौडो ! अपने जीवन में ही भगवत्तत्त्व को जगाओ ! प्रत्येक आत्मा में भगवज्ज्योति छिपी हुई है ! प्रत्येक आत्मा,

धर्माचरण के द्वारा, धर्मात्मा और महात्मा की भूमिकाओ को पार करता हुआ, परमात्मा बन सकता है! यह जैन - धर्म की मूल-प्रेरणा है!

और, भक्त से भगवान् तथा आत्मा से महात्मा और महात्मा से परमात्मा बनने के लिए, जैन - धर्म कहता है अपना विचार बदलो, अपना आचार बदलो, अपना व्यवहार बदलो। जब तक अन्तर्दृष्टि नहीं बदलती; तब तक जीवन की सृष्टि बदल नहीं सकती! इसलिए, विचार करो: मैं जड नहीं, चेतन हू! ससार की अधेरी गलियो में भटकना जीवन का लक्ष्य नहीं है! कर्म और वासना के बन्धनो से मुक्त होना ही, मानव-जीवन की सर्वोच्च परिणति है! हिंसा, असत्य, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष—ये सब जीवन के विकार हैं, जिन के कारण नाना-रूप बना कर यह आत्मा संसार का नाटक खेलता रहा है, और कष्ट-पर-कष्ट उठाता रहा है! संसार के विष-वृक्ष की जड़ों को सींचने वाले ये विकार ही हैं! इन विकारों के जाल को काटने पर ही, दु:खों से छुटकारा मिल सकता है, आत्मा के बन्धन टूट सकते हैं और आत्मा में ही परमात्म-ज्योति जगमगा सकती है! अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य अनासक्ति, क्षमा, शील, सन्तोष —ये आत्मा के मूल-धर्म हैं! इन की साधना के द्वारा ही, आत्मा तथा मन के विकारों का परिमार्जन किया जा सकता है! भक्त से भगवान् बना जा सकता है!

और, इस विचार में से ही आचार की ज्योति फूटती है! जीवन के व्यवहार में अपूर्व क्रान्ति आ जाती है! और, साधक अपने जीवन में ही भगवद्-भावनाओ का प्रकाश देख कर कृत-कृत्य हो उठता है!

४. **प्रश्न:** हमारे करने से क्या हो सकता है? यह सब तो ईश्वर की कृपा पर ही निर्भर है! क्या उस की कृपा के बिना भी, हम ऊपर उठ सकते हैं जीवन में?

उत्तर: पंडित जी! जैसा आप ने या दुनिया ने ईश्वर या परमात्मा के बारे में अपना सकल्प बना लिया है, वास्तव में बात ऐसी है नहीं! "ईश्वर ही सब-कुछ करता है, मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता" —यह तो एक नपुंसक-विचारधारा है! इस विचार के अंधेरे में तो पापाचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार को फूलने का और खुल कर खेलने का अवसर मिलता है! फिर तो, दुनिया-भर के पापी, अत्याचारी यही कहेंगे कि, हम पाप थोड़े ही कर रहे हैं! हम तो कुछ भी नहीं कर रहे! जो-कुछ करा रहा है, सब-कुछ ईश्वर करा रहा है। हम तो सब उस के हाथ के खिलौने हैं!

और, एक दिन कर्मयोगी कृष्ण से मक्कार दुर्योधन ने, स्पष्ट शब्दों में यह कह ही दिया था —हे केशव! धर्म - कर्म की बात मैं भी जानता हूँ; पर, उस पर चल नहीं सकता और अधर्म के मार्ग से भी मैं परिचित हूँ; पर, उस से हट नहीं सकता! क्योंकि, मेरे जीवन की बागडोर मेरे हाथ में नहीं है! मैं तो ईश्वर के हाथ की कठपुतली हूँ जैसा वह नचाता है, वैसा नाच रहा हूँ —

"जानामि धर्मं, न च मे प्रवृत्तिः,
जानाम्यधर्मं, न च मे निवृत्तिः!
केनापि देवेन हृदि स्थितेन,
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि!!"

ईश्वर की डिक्टेटर-शिप के बारे में, एक उर्दू का शायर भी, इसी तरग में बोल रहा है :—

"हो गया हूँ दुनिया-भर के मैं गुनाहों में शरीक !
जब से मैंने यह सुना है, उस की रहमत आम है !!"

और, "ईश्वर ही हमारा त्राण-कल्याण करेगा, ' ससार सागर से उबारेगा— यह भी कल्पना यथार्थ से परे की है ! अगर, ईश्वर ही हमें उठाने वाला होता, तो हम कभी के ऊपर उठ गए होते ! अगर, ईश्वर ही हमारा कल्याण और उद्धार करने वाला होता तो, कभी का हमारा कल्याण-उद्धार होगया होता ! अनन्त - काल से भूले-भटके जीवन पर ईश्वर की कृपा नहीं हो सकी; तो इस का अर्थ यही है कि, कोई दूसरी शक्ति हमें उठाने वाली नहीं है ! हमारा उद्धार करने वाला इस जमीन - आसमान की दुनिया में, कोई भी नहीं है; हम अपनी भूलो और नादानियो से अपने-आप बिगडते रहे हैं ! अपने हाथो अपना विनाश करते रहे हैं ! और, जब उठेंगे तो, अपनी स्वय की चेतना की गहरी अगडाई लेकर, अपने-आप ही उठेंगे ! बनेंगे तो, अपने सत्याचरण से बनेंगे ! उद्धार होगा हमारा तो, अपने करने से ही होगा ! सुख-दुःख की सारी जवाबदारी, हमारे अपने ऊपर ही है ! हम स्वय अपने जीवन के निर्माता हैं ! अपने - आप अपने भाग्य-विधाता हैं ! अपने शत्रु और मित्र हम स्वय हैं ! बुराइयो के साचे में ढल कर, हम अपने शत्रु बन जाते हैं, और जीवन पर अच्छाइयों का रग चढ़ाने पर, हम अपने मित्र बन जाते हैं ! श्रमण भगवान् महावीर ने, संसार को यही सन्देश दिया था एक दिन :—

"अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य !
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिअ सुपट्ठिओ !!"

योग वाशिष्ठ का उद्गाता ऋषि भी तो यही बोल रहा है:—

"नरः कर्ता नरो भोक्ता, नरः सर्वेश्वरेश्वरः !"

—मनुष्य ही अच्छे बुरे कर्म करता है और उन का फल भी मनुष्य अपने-आप ही भोगता है ! यह मनुष्य तो ईश्वर का भी ईश्वर है ! गीता में भी यह प्रेरणा देखने को मिलती है :—

"उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं, नात्मानमवसादयेत् !
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु-रात्मैव रिपुरात्मनः !!"

इसलिए, आत्म-जागरण की अगडाई लेकर, मनुष्य सब-कुछ कर सकता है ! उस की क्षमता का आर-पार नहीं है ! मनुष्य के अन्दर सब-कुछ करने और सब-कुछ बनने की क्षमता रही हुई है —

"क्या कर सकते नहीं विश्व मे, यदि दायित्व निभाओ !
सब-कुछ करने की क्षमता है, आगे क़दम बढ़ाओ !!"

इसलिए, अपनी क्षमता तथा सामर्थ्य पर दृढ़ आस्था-विश्वास रखने वाला साधक, ईश्वर के आगे खडा होकर, कभी गिडगिडाता नहीं है, अपने बन्धन खुलवाने के लिए ! वह तो अपने प्रभु से यही नम्र-निवेदन करता है कि, —प्रभो ! आप ने मुझे बन्धन में डाला नहीं तो, आप मुझे खोलने का भी अधिकार नहीं रखते ! मैं आप की कृपा का भिखारी बनना नहीं चाहता ! ये बन्धन अपने ऊपर, अपने - आप डाले हैं मैंने, और, अपने-आप ही खोलूँगा मैं इनको :—

"प्रभो ! मेरे बन्धन मत खोल !
स्वयं बंधा हूँ, स्वयं खुलूँगा, तू न बीच में बोल !!"

५. प्रश्न : कभी हमारी अन्तर की इच्छा नहीं होती कि, अमुक पाप या बुराई करें; किन्तु फिर भी, हम कर बैठते हैं। इस का अर्थ तो यही है कि, हम पाप करना नहीं चाहते; कोई बलात् हम से करा रहा है ! वह कौन है, हम से पाप कराने वाला ?

उत्तर : आप का प्रश्न सामयिक है ! एक दिन अर्जुन की मन :-स्थिति भी ऐसी ही थी ! अर्जुन ने भी कृष्ण से यही पूछा था कि, किस के द्वारा प्रेरित हुआ, यह आत्मा पाप करता है ? पाप करना न चाहता हुआ भी, आत्मा किस के द्वारा पाप के गड्ढे में ढकेल दिया जाता है ? :—

"अथ केन प्रयुक्तोऽयं, पापं चरति पूरुषः !
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय, बलादिव नियोजितः !!"

उस समय, कृष्ण ने बलात् पाप कराने का दायित्व ईश्वर पर नहीं डाला ! ईश्वर का नाम तक भी नहीं लिया ! उन्हों ने वास्तविक तथ्य अर्जुन के सामने रखते हुए कहा :— अर्जुन ! रजोगुण से उत्पन्न होने वाला काम-क्रोध ही, आत्मा को पाप की ओर प्रवृत्त करता है ! इसे ही तू अपना पाप कराने वाला शत्रु समझ :—

"काम एष क्रोध एषः, रजोगुण-समुद्भवः !
महाशनाः महापाप्मा, विद्ध्येनं हि वैरिणम् !!"

इस विषय मे, जैन-धर्म की चिन्तनधारा भी यही है कि, यह आत्मा अनन्तकाल से काम, क्रोध, मद, लोभ आदि विकारो में रमा रहा

है ! एक तरह से यह विकार - वासनाओं का कीड़ा बना रहा है ! इन्हीं अनन्तकालीन संस्कार-विकारों के कारण, यह आत्मा पाप की ओर प्रवृत्त होता रहता है ! ये विकार ही, संसार के विष - वृक्ष की जड़ों को सींचते रहते हैं ! इनके अतिरिक्त, और दूसरी शक्ति नहीं, जो इस आत्मा को बलात्, पाप - पंक में धकेल सके !

६. **प्रश्न :** बुराई (पाप) और भलाई (पुण्य) की क्या पहचान है?

उत्तर : जो गुप्त है, जिस को करने के लिए अंधेरा चाहिए, जिसे दूसरों की आँखें बरदाश्त न हो, वह पाप है, बुराई है ! और, जो प्रकट है, जिसे छिपने के लिए परदा नहीं चाहिए, वह पुण्य है :—

"गुप्तं पापं, प्रकटं पुण्यम् !"

पाप-पुण्य की इसी परिभाषा को, एक हिन्दी का कवि देखिए, कितने स्पष्ट शब्दों में रख रहा है :—

" पाप - पुण्य का है यह परिचय !
पाप सदा कांपा करता है, और पुण्य रहता है निर्भय !!"

इस प्रकार, पंडित जी ने ज्ञान-चर्चा में खूब रस लिया ! जीवन का तथ्यात्मक दृष्टि-कोण पाकर उन का तन-मन खिल उठा ! भक्ति-रस में डूब कर पडित जी ने प्रसन्न - भाव से, वापस लौटते समय, वेरीनाग आने का अत्यन्त आग्रह किया !

: १६ :

हिम्मत बुलन्द चाहिए !

"हिम्मत बुलन्द चाहिए, ऐ दिल कि वस्ले दोस्त !
आसां अगर नहीं है, तो दुशवार भी नहीं !!"

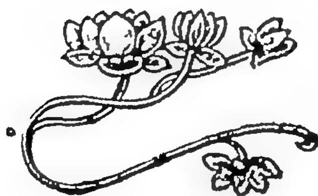
वेरीनाग से कुक्कड़नाग, सात मील पड़ता है, पहाडी पगडंडी के रास्ते से ! तीसरे दिन, दोपहर का आहार करने के बाद, कुक्कड़नाग के लिए प्रस्थान किया हमने ! चश्मे और नाले को लांघ कर, वेरीनाग की बस्ती में से गुजरे ! घरो के आगे, और बस्ती की गलियों में, बड़ी ही गन्दगी थी ! प्रकृति जितनी रूप-सी है, वहा का मानव, वहां की बस्तियां उतनी ही गन्दी हैं ! स्वर्ग के साथ यहां नरक भी बसता है ! आगे लकड़ी के पुल से नदी को पार करके, दूसरी बस्ती में पहुंच गए ! यहां से आगे अब, थोडी दूर तक, कड़ी चढ़ाई से मोर्चा लेना था ! एक वृक्ष की ठंडी छाया में बैठ गए, थोडा दम लेने के लिए; क्योंकि, आगे चढ़ाई के रास्ते पर, वृक्ष नजर नहीं आता था, बहुत दूर तक !

एक कश्मीरी ब्राह्मण, पंडित विश्वनाथ जी भी, आज हमारे दल में शामिल होकर, साथ-साथ चल रहे थे !

अपने गांव में जाना था उन्हे बडे ही शिष्ट, नम्र और मृदुभाषी थे ! कश्मीरी पडित बडे ही मिलनसार, सभ्य और सेवा-भावी होते हैं—ऐसा मैंने अपनी आंखो से देखा और दिल में महसूस किया ! दिल्ली और उत्तर-प्रदेश के ब्राह्मणो को भी, मैं देखता रहा हूं ! बडे ही जात्यभिमानी और अक्खड प्रकृति के होते हैं ! सीधे मुह बात भी नहीं करते ! परन्तु, कश्मीरी ब्रह्मणों में, कम-से-कम यह बात हमें देखने को नहीं मिली !

अब, धीरे-धीरे हमने विकट घाटी की चढ़ाई शुरू की ! कडी चढ़ाई, दोपहर का विहार, अन्न का अवसाद, कटी-फटी तथा पथरीली पगडडी और ऊपर से बढ़ रहा था गर्मी का प्रकोप ! पसीने-पसीने हो गए ! ऊबड-खाबड मार्ग होने से, कभी इधर चलें, कभी उधर चलें ! कुछ साथी आगे बढ गए, कुछ पीछे रह गए और हम बीच में ! विकट चढ़ाई पार करते हुए, ऊपर पहुचे तो, कुछ मैदान-सा आ गया ! दो 'हातो' मजदूर भी, आज युवको का सामान पीठ पर लादे, साथ चल रहे थे ! परन्तु, चढाई होने से, काफी पीछे रह गए ! सागर, तिलक और एक दूसरा व्यक्ति, उनके साथ ही थे पीछे ! थोड़ा आगे चल कर, हम एक वृक्ष की छाया में बैठ गए, पिछले साथियों की प्रतीक्षा में ! ठडी हवा लगी तो, पसीने सूख गए ! थकान भी उतर गई !

पिछले साथियो की थोडी प्रतीक्षा करके, हम आगे चल पड़े ! आगे उतार-ही-उतार था ! कटे-फटे रास्ते से उतरते चले गए ! धूप मे तेजी जरूर थी ! लेकिन, पहाडी ढलानों पर बने खेतों की, मानव के भाग्य की सीढ़ियो-जैसी अनेकानेक मजिलें, और इधर-उधर थोड़ी-थोडी दूर पर, ऊपर ऊचाई पर गर्वीले मानव की बसाई बस्तिया, हमें किसी और ही स्वर्ग में खींचे ले जाती थीं ! लेकिन, यात्रा में सुख



हो तो क्या बात हुई ? मार्ग ऊबड़-खाबड और ऊचा नीचा होने पर भी, तपोवन-जैसा सुन्दर लगा ! ज्यो-ज्यों 'कुक्कडनाग' नजदीक आ रहा था; त्यों-त्यो वृक्षों की सघनता बढती जा रही थी। ऊपर पहाड़ की चोटियो पर, खड़े चीड़ के हरे-भरे वृक्ष, बड़े प्यारे लगते थे ! चलते-चलते कुक्कडनाग के चश्मे के ऊपर ही जा पहुचे हम ! सामने बस्ती नजर आ रही थी ! कल-कल, छल-छल करता चश्मे का धवल-स्वच्छ प्रवाह, बडी तेजी पर था ! पक्के पुल से उसे पार किया और सरकारी बाग़ के पास, सडक के किनारे छाया में कुछ देर के लिए बैठ गए ! आज की यात्रा थी तो कठिन; पर, मजिल के सिरे पर पहुच कर प्रसन्नता ही हुई ! और, बैठे-बैठे दो शेर याद आ गए :—

"काट लेना हर कठिन मंजिल का कुछ मुश्किल नहीं !
इक जरा इन्सान में, चलने की आदत चाहिए !!"
हिम्मत बुलन्द चाहिए, ऐ दिल कि वस्ले दोस्त !
आसां अगर नहीं है, तो दुशवार भी नहीं !!"

हाई स्कूल बन्द था ! डाक-बगले का व्यवस्थापक श्रीनगर गया हुआ था ! ठहरने की समस्या खड़ी हो गई सामने ! सेवक पृथ्वीसिंह और दूसरे युवक दौड़-धूप कर रहे थे स्थान के लिए ! छोटी-सी बस्ती, पाच-चार दुकानें ! स्थान मिल नहीं रहा था ! सैलानियों के न आने के कारण,होटल अभी बद पडे थे ! एक होटल का व्यवस्थापक टकरा ही गया ! बद और सुनसान था उसका होटल ! ऊपर की मंजिल में दो कमरे मिल गए, और रात-भर ठहरने के की समस्या हल हो गई !

कुक्कुडनाग, स्थान तो रमणीय है, लेकिन खास रौनक नहीं ! छोटी-सी बस्ती में कश्मीरी-पंडितों का सिर्फ़ एक घर ! पता लगते ही आए ! अतिथि-सेवा करके प्रसन्न हो उठते हैं कश्मीरी पंडित ! शाम को उन्हीं के घर से आहार-पानी लाए ! अब, चूं कि हम पीर-पंजाल पार करके, ठेठ कश्मीर में पहुंच गए थे; इसलिए, खान-पान, रहन-सहन, बोल-चाल और व्यवहार-बरताव में एकदम अन्तर आ गया था ! कश्मीरी लोग चावल अधिक खाते हैं ! साग-सब्जियों का इस्तेमाल भी काफी करते हैं ! लेकिन, भारत के अन्य प्रान्तों में जैसे दाल-भात या दाल-रोटी खाने का ही रिवाज है, कश्मीरी 'कड़म' साग और 'भात' पर ही निर्वाह करते हैं ! वेरीनाग और कुक्कडनाग में, हमें भी कड़म और भात का ही भोग लगाने का अवसर मिला ! हमारे लिए यह चीज़ नयी और विचित्र-सी थी !

कुक्कडनाग, पानी के चश्मे की वजह से प्रसिद्ध है ! लोगों का विश्वास है कि, इसके पानी से पेट तथा फेफड़े के सब रोग दूर हो जाते हैं ! कहते हैं कि, इस चश्मे का पानी पाचन-शक्ति इतनी बढ़ा देता है कि, भूख कभी मिटती ही नहीं है !

कुक्कडनाग से आगे अच्छाबल नौवें मील पर है ! सीधा सड़क का रास्ता ! अब न उतार, न चढ़ाव ! इधर-उधर पहाड़, बीच में मैदान दूर तक ! रात-भर ठहर कर, १ मई के दिन, लगभग ग्यारह बजे, हम चल दिए आगे की मंजिल पर ! सड़क के कभी इधर, कभी उधर, चश्मे का पानी तेज़ रफ्तार से दौड़ रहा था साथ-साथ ! सड़क के दोनों तरफ़

पानी से भरे खेत ! किसान धान की खेती बो रहे थे ! थोडी-थोडी दूर
र, सड़क के किनारे गाँव और बस्तियाँ भी आती जाती थीं ! दो-तीन
जिल के प्रायः कच्चे मकान ! ऊपर ढलवाँ छप्पर ! ठेठ मुसलमानो
की आबादी ! एक कश्मीरी ने बतलाया : सर्दी के मौसम में, यहाँ
इतनी वर्फ पड़ती है कि, चार महीने तक घरो के अन्दर ही बंद रहना
पडता है, हम लोगों को ! छह महीने की कमाई साल-भर खाते हैं !
उस की वात सुन कर, मन को कुछ अच्छी नहीं लगी ! तब ये लोग कैसे
रहते होंगे ? क्या करते होंगे ? कश्मीर के स्वर्ग में भी कितना भयकर
नरक है ? यही प्रकृति, जो गर्मी में जन-जीवन के लिए वरदान बन जाती
है, सर्दी में कितने भयंकर अभिशाप का रूप धारण कर लेती है, यहाँ के
निवासियों के लिए ? ऐसे अनेक तरह के विचार, एकदम घूम गए, मन की
दुनिया में ! "चार-छह महीने तक अन्दर बैठे-बैठे, आप लोग क्या करते
रहते हैं ?" —इस प्रश्न के उत्तर में उस कश्मीरी ने बतलाया ' अपना
काम करते रहते हैं ! घरेलू उद्योग - धन्धों में लग जाते हैं ! औरतें
चरखे पर सूत या ऊन कातती हैं और उसी से कपडा बुनती हैं ! वे
घास की रस्सियाँ भी तैयार करती हैं और उन से "पुलहोर जूतियाँ",
बनाती हैं ! बर्फ पर चलने के लिए यह जूती बहुत ही अच्छी रहती
है ! कुछ लोग 'काग रियाँ' बनाते हैं ! इस के अलवा, गब्बा, नमदा
और कंबल बनाने का उद्योग भी सर्दियो में जोरों से चलता है !

इस तरह, अपनी मस्ती की चाल से, कहीं बस्तियों को देखते हुए,

कहीं पानी - भरे खेतों पर नज़र डालते हुए, कहीं बाग़ - बग़ीचों की बहार लेते हुए, कहीं खान में पत्थर तोडते हुए, मजदूरों की दुनिया पर दृष्टि डालते हुए, इधर-उधर से आती नदियों और नालों को, पुलों से पार करते हुए, हम आगे बढ़ते रहे ! आकाश में बादल छा गए ! ठंडी हवा और बादलो की छाया में जल्दी-जल्दी क़दम उठाते हुए, हम 'अच्छावल' पहुँच गए ! दूसरी मंजिल पर, ब्राह्मणो की एक छोटी-सी धर्मशाला में, ठहरने के लिए, जगह मिल गयी ! आज की यात्रा में बडा आनन्द रहा !

: १७ :

अगर कुछ मुँह से कहता हूँ !

"अगर कुछ मुँह से कहता हूँ, मजा उल्फ़त का जाता है !
अगर खामोश रहता हूँ, कलेजा मुँह को आता है !!"

अच्छावल में चश्मे के पास ही, ऊपर धर्मशाला में ठहरे थे हम ! शाम को वारिश ने अपनी खूब वहार दिखलायी ! साथ में सायँ-सायँ करती ठंडी - ठंडी हवा ! सर्दी एकदम बढ़ गई ! सामने बाजार में ठंड के कारण, कश्मीरियों ने 'काँगरी' को अपनी छाती से लगा लिया ! 'काँगरी' कश्मीरी लोगों के दिल की रानी है !

'काँगरी' एक प्रकार की वहनीय अँगीठी है, जो मिट्टी के प्याले के समान पात्र 'कुण्डल' से बनती है ! इस के ऊपर वेद की पतली टहनियों का 'फ्रेम' सा बुना जाता है ! फ्रेम, पात्र से पांच - छह इंच ऊंचा रहता है; जिसे पकड़ कर 'काँगरी' को उठाया जा सकता है ! ऊपर के ढांचे पर भाँति-भाँति के रंग लगाए जाते हैं; जिस के कारण, यह परितापनी, देखने में भी सुन्दर लगती है ! इस के अन्दर लकड़ी के कोयले का चूरा डाल कर, ऊपर से थोड़ी-सी आग डाल देते हैं ! अंगारे की आग धीरे-धीरे कोयले के चूरे में फैलती है, और गर्मी देती है !

कश्मीरियों के सामने सर्दियों की सब से बडी समस्या अपने को गर्म रखने की है ! इस का हल कश्मीरियों ने 'कांगरी' में ढूंढ निकाला है ! घर पर या घर से बाहर, 'फिरन' (कुर्ता) के नीचे कांगरी छिपाए, यह लोग फिरते रहते हैं ! इस की उपयोगिता से सम्बन्धित एक कहानी भी प्रचलित है ! कहते हैं, कश्मीर के लोगो को सर्दी से बचाने के नुस्खे बताने के लिए, एक चिकित्सक बाहर से आया ! बारामुल्ला पहुँच कर, उसने एक नाविक को नदी के किनारे, मजे से गप्पें लडाते देखा ! चिकित्सक ने सोचा शायद यह पागल हो गया है ! वरन्, इतनी सर्दी में नदी-किनारे बैठा क्या करता यह ? किन्तु, जब चिकित्सक को पता चला कि, नाविक ने फिरन (कुर्ता) के नीचे, 'कांगरी' छिपा रखी थी, तो वह तुरन्त वापस लौटने के लिए तैयार गया ! उसके साथियों ने, उसके इतने जल्दी लौटने का कारण पूछा तो, वह बोला : कश्मीरियों ने सर्दी से बचने की तरकीब ढूंढ निकाली है, इसलिए मेरे वहां जाने की कोई जरूरत ही नहीं !

दरअसल, अस्थि-भेदक शीत के क्षणो में, 'कांगरी' के बग़ैर कश्मीरियों को जीना मुश्किल हो जाता है! सर्दी के आने पर, कश्मीरी अपनी धुन में गा उठता है —

"अय कांगरी, अय कांगरी,
'कुर्बान, तू हूरो परी !"

—ओ कागरी , तेरी वदना ! तू स्वर्ग की परी है !

अच्छावल का बाग, अनन्तनाग से सात मील की दूरी पर स्थित है, और पानी के बहुत बडे चश्मे के कारण भी प्रसिद्ध है ! इस स्थान का का नाम 'अवशावल' था ! अवश राजा ने ५७१ - ६३१ ई० के बीच

इस का निर्माण किया था—ऐसा राजतरंगिणी से स्पष्ट है ! पहाड की ढलान पर, चश्मे का पानी कई स्थान से छूटता है ! एक स्थान पर तो छिद्र इतना वडा है कि, मनुष्य तैर कर अन्दर जा सकता है ! यह बाग पत्थर की फसील से घिरा हुआ है ! नाना-रंग के फूलो की वहार देखते ही वनती है ! चश्मे का पानी नहर द्वारा वाग मे से गुजरता है ! इस को आवशारों द्वारा गिराया गया है ! वाग के वीच की आवशार वडी है, और १२ फीट की ऊँचाई से गिरती है ! नहर के वीच में फव्वारे लगे हैं ! फव्वारे चलने पर एक अजव समां वंध जाता है !

सुवह वाहर गए ! वाग वीच में ही पडता था ! घूमे-फिरे और फिर प्रस्थान कर दिया मटन की ओर ! सड़क का रास्ता ! चश्मा, एक नहर के रूप में, सडक के साथ-साथ चलता रहा, वहुत दूर तक, उछलता-कूदता हुआ ! सड़क के इधर-उधर, धान के खेत पानी से भरे खडे थे ! जल-ही-जल दीख पडता था दूर तक ! रास्ते में सडक के सहारे कहीं वस्तियाँ, कहीं वाग ! बीच में एक छोटी-सी घाटी पार की, पगडडी के रास्ते से ! आगे वढ़ कर ऊपर से देखा, दूर-दूर तक पानी-ही-पानी भरा हुआ था, वहुत नीचाई में ! युवकों ने वतलाया : यही मटन है ! नीचे उतर कर मटन पहुँच गए ! चश्मे के निकट ही मन्दिर के पार्श्व में ठहरने का स्थान मिल गया !

मटन का असली नाम 'मार्तण्ड' था ! मटन, मार्तण्ड का ही अपभ्रंश है ! श्रीनगर से पहलगाम जाने वाली सडक पर, ४२वें मील पर स्थित है ! और, खुले मैदान में जीवन व्यतीत करने के लिए, एक सुन्दर स्थान है ! यहां का चश्मा भी वहुत मशहूर है ! चिनार के विशाल वृक्षों के झुरमुट के वीच, विमल और कमल नाम के दो जल-कुण्ड हैं यहाँ पर ! इन का जल वड़ा ही साफ-स्वच्छ है ! मुगल-सम्राट्

जहाँगीर के आदेश से, १६३० ई० में, इस के साथ ही, एक चिनार का बाग लगाया गया ! आजकल इस तीर्थ के कुछ हिस्से पर, सिक्खों ने जबरदस्ती कब्जा कर लिया है ! उनका कहना है : यह सिक्खों का तीर्थस्थान है ! इस का नाम 'नानकसर' था ! पडो और सिक्खो के बीच तीव्र सघर्ष चल रहा है, इस स्थान के सम्बन्ध में !

मटन, कश्मीर का प्रसिद्ध तीर्थ है ! यह कश्मीर का 'हरिद्वार' कहा जाता है ! लौंद का महीना आने पर, कुंभ का मेला भरता है यहाँ पर ! कश्मीरी पडों के लगभग ३०० घर हैं ! आने-जाने वाले सैलानियो की दान-दक्षिणा पर, खूब गुलछर्रे उडाते हैं ये पडे ! वहाँ का एक दृश्य तो अब तक मेरी आँखों में घूम रहा है ! श्रीनगर से पहलगाम जाते हुए, दो फौजी ट्रक यहाँ रुके, कुछ देर के लिए ! नीचे उतरते ही, पडो ने बुरी तरह घेर लिया उन्हें ! नगर में पता लगा तो, खलबली मच गई ! एक भूचाल-सा आ गया वहाँ के वातावरण में ! लाल - हरे रग के बड़े-बडे बहीखाते बगल में दबाए, मटन के पडे, अपने-अपने घरों से निकल कर विमल - कमल जल-कुण्डों की ओर बेतहाशा दौड रहे थे ! कोई किसी के पीछे लग गया तो, कोई किसी के ! कोई किसी की बाह पकड रहा था तो, कोई किसी का आगा रोक रहा था ! कोई अपनी बात किसी के गले उतार रहा था तो, कोई किसी को कमल - विमल कुड की फिलासफी समझा रहा था ! कोई किसी को जल-स्रोत दिखा रहा था तो, कोई किसी को मन्दिर की तरफ ले जा रहा था ! कुछ नहाने वालों के पास खडे थे तो, कुछ सैनिकों के चारों तरफ घेरा डाले खडे थे ! कोई पुराने खाते में किसी का नाम दिखा रहा था तो, कोई नए सिरे से खाते में किसी का नाम डाल रहा था ! कोई किसी को अपनी ओर खींच रहा था

तो, दूसरा अपनी ओर बुला रहा था ! कोई किसी को अलग लिए बैठा था तो, कोई खड़े-खड़े ही, अपना हिसाब चुका रहा था ! सब अपने-अपने हथकडे काम में ला रहे थे ! एक हगामा-सा मचा हुआ था, उन पडो और सैनिको में ! एक छीना - झपटी-सी चल रही थी, एक लूट-खसोच-सी मची हुई थी !

और, इस छीना-झपटी के दृश्य को, हम अपने कमरे में बैठे-बैठे देख रहे थे ! हंसी भी खूब आई और मन में खेद भी बडा हुआ ! ब्राह्मण-जगत् की अवनति और दुर्दशा की एक जीती-जागती तस्वीर आँखो के सामने नाच रही थी ! मैंने भी ब्राह्मण-वश में आँख खोली थी एक दिन ! इसलिए अपने वशजो की इस अपगति और दुरवस्था पर, मन कितना खेद-खिन्न था —यह लेखनी का विषय नहीं ! उस हगामे को देखकर, मेरे मन-मानस में मन्थन का तूफान-सा चल रहा था —"जन-जन में ज्ञान के दीप जलाने वाला ब्राह्मण, आज स्वय किस तरह गहरे अंधेरे में भटक रहा है, और दूसरो को भी कितने अधेरे की ओर ले जा रहा है ! इन की ज्ञान-चेतना और आचार-साधना, आज कितनी धुधली हो गई है ! एक दिन, जो जीवन का अमर साधक बन कर, ससार को ज्ञान तथा आचार की दीक्षा देने में अनुपम सामर्थ्य रखता था, आज वह साधना की उन उच्च भूमिकाओ से, किस तरह भूल-भटक गया है ? क्या इसी ब्राह्मण के लिए महर्षि मनु ने एक दिन सारे ससार को ललकार कर कहा था— पृथ्वी पर विचरण करने वाले मनु-पुत्रो ! आओ, और इस देश में जन्मे ब्राह्मण के चरणो में बैठ कर, ज्ञान और आचार की शिक्षा लो :—

"एतद्देश – प्रसूतस्य , सकाशादग्रजन्मनः !
स्वं स्व चरित्रं शिक्षेरन्, पृथिव्यां सर्वमानवाः !!"

"जन-जन को आचार की शिक्षा-दीक्षा देने वाला ज्ञान का देवता ब्राह्मण, आज किन हथकडो को बरत रहा है, कुछ छीनने - झपटने के लिए ! स्त्री, बाल-बच्चों के मोह-जाल में पड कर, ज्ञान का यह अमर अधिष्ठाता, कैसा भिखमगा बन गया है ! एक टीस-सी जिगर में हो रही थी, एक दर्द-सा दिल में चल रहा था ! पर, कुछ बोल नहीं सकता था ! मेरी हालत उस वक्त कुछ ऐसी बन गई थी, शायरी की भाषा में —

"अगर कुछ मुँह से कहता हूँ, मजा उल्फत का जाता है !
अगर खामोश रहता हूँ, कलेजा मुँह को आता है !!"

"और, इसीलिए, दिल अन्दर-ही-अन्दद बोल रहा था —

"हजारो नग्मए दिलकश, मुझे आते हैं ऐ बुलबुल !
मगर दुनिया की हालत देखकर, चुप हो गया हूँ मैं !!"

"उस लूट-खसोट के हगामे को देख कर, मेरे दिल की दुनिया में भी बहुत देर तक एक हगामा-सा मचा रहा !"

मटन म, अनेक जैन-भिक्षुओ से परिचित, एक युवक पंडा, हमारे पास आता-जाता रहा ! अच्छा प्रेमी और सज्जन था प्रकृति से ! सन्ध्या के समय, बातचीत के सिलसिले में, उसने हम से पूछा : यहाँ से दो मील की दूरी पर स्थित, पुराना 'मार्तण्ड' का मन्दिर भी देखा या नहीं आप ने ?

मैंने कहा · हमें तो पता भी नहीं ! हम तो आप की इस दुनिया में नए-नए ही आए हैं ! इसलिए, यहाँ क्या देखने की चीज है— इस से हम अनभिज्ञ ही हैं !

मेरी कश्मीर यात्रा के पन्ने

वह बोला ' अच्छा, मैं सुबह आऊँगा ! वह तो दर्शनीय स्थान है यहाँ का ! मैं स्वय साथ चल कर, आप को अच्छी तरह मन्दिर दिखला कर लाऊँगा !

और, सुबह सात बजते ही, वह ब्राह्मण-युवक आ पहुँचा हमारे पास ! बोला' चलिए, मैं आ गया हूँ तैयार होकर ! दो मील जाना है और दो मील ही वापस आना भी तो है !

हम चल दिए उसके साथ, प्राचीन - सस्कृति के उस स्मारक को देखने के लिए ! काफी ऊँचाई पार करके, हम ऊपर पहुँचे, दो मील का फासला तय करके ! मन्दिर के उस भग्नावशेष को देख कर, मन एकदम पुरानी दुनिया में पहुँच गया ! कश्मीर के प्राचीन स्मारक-चिन्हो में सर्वश्रेष्ठ, इस मार्तण्ड के मन्दिर को देखे बिना, किसी की भी कश्मीर-यात्रा पूरी नहीं समझी जा सकती—ऐसा मैंने अपने दिल में महसूस किया वहाँ ! मुख्य मन्दिर ४० फीट से अधिक ऊँचा नहीं ! किन्तु, इस की भारी दीवारें, जो अलकृत स्तम्भ-रेखा की परिक्रमा से बहुत ऊँची हैं, तथा इस की सुन्दर बाहरी रेखा ही, इसे प्रभावशाली बनाते हैं ! असली इमारत चतुष्कोण आँगन में बना हुआ, बीच का भवन है, जिस के दोनों ओर अनुपूरक भवन हैं ! ये चारो ओर अलकृत-स्तम्भो की पंक्ति को समाविष्ट करते हैं ! मन्दिर ६०४ फीट लम्बा और ३८६ फीट चौडा है ! स्तम्भ-रेखा से घिरा हुआ मन्दिर का आँगन अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि, इसी पर यूनानी कला की छाप स्पष्ट दिखाई पडती है ! मिट्टी के आदम-क़द मटके इधर-उधर काफी पडे हुए थे ! इनके अन्दर चावल सग्रह करके रखा जाता था—ऐसी जन-श्रुति हे ! इस मन्दिर का निर्माण ललितादित्य ने कराया

था और सिकन्दर बुतशिकन ने इस का ध्वस किया था ! अनुमान से ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो यह किसी जमाने में बौद्ध-विहार रहा हो ! क्योंकि, कश्मीर में एक दिन बुद्ध-धर्म खूब छाया हुआ था !

अस्तु, लगभग दस बजे तक, हम वापस लौट आए, उस प्राचीन सस्कृत के भग्नाव-शेष को देख कर ! अपने बूढ़े पिता और बाल-बच्चो को दर्शन कराने की दृष्टि से, वह युवक-पण्डा आते हुए, हमें अपने घर पर भी ले गया ! हमें देख कर बूढे ब्राह्मण का रोम-रोम पुलकित हो गया !

: १८ :

चिराग़ इन्सानियत के हरसू !

"चिराग इन्सानियत के हरसू, न जब तक इन्साँ जला सकेंगे !
रहेगा छाया हुआ अंधेरा, फ़िज़ा भी तारीक ही मिलेगी !!"

मटन से सीधे श्रीनगर जाने का प्रोग्राम था अपना ! एक तो पहलगाम जाने का सीज़न नहीं था ! सर्दी खूब पड़ रही थी, अभी वहाँ पर ! दूसरे, समय कम था और रास्ता लम्बा था हमारे सामने ! इसलिए, पहलगाम जाने का मन में कोई संकल्प नहीं था ! लेकिन, सहयात्री युवक-वर्ग का आग्रह था कि, पहलगाम, कश्मीर में सर्वाधिक रमणीय और दर्शनीय स्थान है ! इसलिए, पहलगाम तो ज़रूर चलना चाहिए ! आप के साथ हम भी पहलगाम देख लेंगे ! यहाँ से सिर्फ बाईस मील ही तो रह गया है, अब पहलगाम !

हमारा मन दुविधा की स्थिति में चल रहा था ! मैंने अपने साथी श्री उमेश मुनि जी से विचार विनिमय किया ! और, अन्ततः हम इसी परिणाम पर पहुँचे कि, अस्थि-भेदक सर्दी और कठिनाई को, हर क़ीमत पर चुनौती देकर भी, पहलगाम देख ही लेना चाहिए ! जीवन में फिर कश्मीर कहाँ आना है ! युवकों के दिल की तमन्ना भी पूरी हो जाएगी !

बढ रहे थे ! खेतों में से एक कश्मीरी, सडक पर सामने आकर बोला बावा ! कोई दवा हो तो दो ! मेरा पैर सूजा हुआ है ! बडा दर्द हो रहा है ! महरबानी कीजिए !

मैंने पीछे आते हुए युवकों की तरफ इशारा किया ! दवाइयों का थैला था उनके पास ! पैर को दवा लगाने से कश्मीरी बडा खुश हुआ ! मैंने युवकों से कहा · "इन्सानियत का यही तक़ाज़ा है ! मानवता की यही पुकार है ! इस के अभाव में, धर्म-कर्म की सारी बातें थोथी पड जाती हैं दरअसल :—

"ईमाँ ग़लत, असूल ग़लत और दुआ ग़लत !
इन्साँ की दिलदही जो इन्साँ न कर सके !!"

"और, मानवता तथा आदमीयत शायरी की भाषा में यही तो है :—

"दर्दे दिल, पासे वफ़ा, जज्बए ईमाँ होना !
आदमीयत है यही और यही ईमाँ होना !!"

"और, इसी का नाम धर्म है ! यही इबादत है ! यही दीन है और, यही ईमान है —

"यही है इबादत, यही दीनो ईमाँ !
कि काम आए दुनिया मे इन्साँ के इन्साँ !!"

"और, जब तक दुनिया के कोने-कोने में, ये इन्सानियत के चिराग़ नहीं जलेंगे, तब तक इन्सान चाहे कितनी भी तरक्क़ी हासिल करले, बाहर की कितनी ही चमक-दमक और रोशनी पाने का दावा कर ले,

वे सब झूठे और बेकार ही साबित होगे ! इसीलिए तो शायर बेधड़क होकर बोल रहा है :—

"चिराग इन्सानियत के हरसू, न जब तक इन्साँ जला सकेंगे !
रहेगा छाया हुआ अंधेरा, फिजा भी तारीक ही मिलेगी !!"

इन्हीं विचार-लहरो पर तैरते हुए, हम उस नहर की पटरी—जो दरअसल सडक ही थी—पर चल रहे थे, जो गणेशपुरा से आगे लिद्दर नदी से निकाली गई है ! ढलान होने के कारण, नहर के पानी का प्रवाह अत्यत तीव्रता पर था ! ऊपर, पहाड़ पर से होती हुई यह नहर, मटन से आगे, मार्तण्ड-मन्दिर के पास से नीचे उतारी गई है, जिससे दूर-दूर तक के इलाके में खेतो की सिंचाई की जाती है ! शाम को, डेढ़-दो घण्टा दिन रहते, हम गणेशपुरा पहुँच गए ! यहाँ पर कश्मीरी पडितों के आठ घर हैं ! एक बैठक मिल गई ऊपर ठहरने के लिए ! सूचना मिलते ही बूढ़े, बुढिया, युवक, प्रौढ, बच्चे—सब दौडे आए ! हर्ष-विभोर हो उठे हमें देखते ही ! एक बुढिया हमें देख-देख कर भाव-विभोर हो रही थी बैठी-बैठी ! न वह हमारी भाषा समझती थी और न हम ही समझते थे उस की भाषा ! फिर भी, मन-ही-मन प्रसन्न हो रही थी ! चेहरा हँस रहा था उसका ! उन कश्मीरी पडितो के विनम्र-निवेदन पर, मैं उनके घरो में चाय-पानी के लिए गया, पृथ्वीसिंह सेवक का साथ ले कर ! घर पर गद्दी-तकिये लगाए हुए थे उन्होने ! नया सुन्दर गलीचा बिछा रखा था ! हमारे पहुँचने पर बोले . आइए, कृपया विराजिए यहां पर थोडी देर !

मैंने कहा · हम जैन-भिक्षुओ की ऐसी मर्यादा नहीं है ! किसी के यहां गद्दी-तकिये या गलीचे की तो बात ही क्या, हम साधारण

कपडे या पलग पर भी नहीं वैठते। भिक्षा हम खडे-खडे ही स्वीका करते हैं। भिक्षा के समय किसी के घर हम वैठते नहीं। आप कं सेवा-भक्ति सराहनीय है।

मैंने देखा, मेरी इस वात से उन के दिल को उन की भावना को कुछ ठेस-सी लगी। इधर, हम भी मजवर थे, उन की इस सद्‌भावना को साकार करने के लिए। आखिर, थोडा समझाने पर, त्याग और सच्चाई की वात, उन के मन मे वैठ गई! सव पुरुषो और घर की सव महिलाओ ने, वारी-वारी से विनम्र-नमन किया। मैं पहले भी जिक्र कर चुका हूँ कि, कश्मीरी पडित, वडे विनम्र तथा अतिथि-सेवक होते हैं! गरम चाय लेकर मैं अपने स्थान पर लौट आया!

सर्दी में निर्वाह करने के लिए, कश्मीरियो ने चाय को ही अपना साथी वना लिया है! वहां चाय दो प्रकार की वनती है, कहवा और नमकीन चाय! कहवा एक खास सब्ज चाय की पत्तियो को चीनी समेत उवाल कर वनाया जाता है और अति स्वादिष्ट होता है! चीनी लोगो की तरह वे चाय में दूध नहीं डालते! चाय हमेशा 'समावार' में तैयार की जाती है! नमकीन चाय, पत्तियो को नमक वाले पानी में उवाल कर वनाई जाती है! रग निकल आने के लिए, उस में थोडा खाने का सोडा डाल देते हैं, और घटा-भर उवाल कर, उस में फिर पानी और दूध डाल देते हैं! कश्मीरी चाय पीने के बड़े शौकीन होते हैं! काम पर लगे हुए कारीगर, या मजदूर या किसान एक घटे में एक पूरा 'समावार' खाली करके रख देंगे! कश्मीर की उस ठडी दुनिया में, हम भी कुछ-कुछ चाय पीने के आदी हो चले थे!

अस्तु, हम रात-भर गणेशपुरा ठहरे और प्रात. सूर्योदय होते ही,

[प]हलगाम की ओर अभियान कर दिया ! सड़क, लिद्दर नदी के किनारे-किनारे चल रही थी ! नदी का नीला जल भी, पत्थरों की टकराहट से, फेनिल-धवल नजर आ रहा था ! प्रभातकालीन बाल-रवि की गुलाबी कोमल किरणें, जल-तरगो मे अठखेलियाँ करती हुई, बड़ी भली मालूम दे रही थीं ! मार्ग मे सरसता लाने के लिए, छोटे-मोटे सोते और झरने भी कम नहीं थे ! मार्ग को तरल बना देने वाले ये सोते और झरने, यात्रियो को फूल-सा हल्का करके, उनमे नव-चेतना भर रहे थे ! कहीं सुन्दर बाग, कहीं चश्मे, कहीं नदी, कही नाले ! और, आँखो के सामने ऊँचे-ऊँचे पहाड़ो की हिमाच्छादित चोटियाँ ! हिम - मडित गिरि-शिखर आँखों और मन के लिए, आज विशेष आकर्षण के केन्द्र बने हुए थे, और हमें बरबस अपनी ओर- खींचे चले जा रहे थे ! पहाड़ों के बीचो-बीच और नदी के किनारे-किनारे चलता हुआ, आज का मार्ग, बडा सुखद लग रहा था ! और, तब और भी सुखद लगने लगता था, जब साथ का युवक, सोहनलाल डोगरा चलते चलते मुक्त-कण्ठ से अपनी स्वर-लहरी छेड देता था ! इस प्रकार, हमारा दल मस्ती में झूमता हुआ, पहलगाम के नजदीक पहुँचा तो, तीन-चार फर्लांग पर, नन्ही-नन्ही बूंदो और भीनी-भीनी फुहारो ने, आगे बढ कर हमारा स्वागत किया और उस भीगे-भीगे वातावरण में, हमने पहलगाम में प्रवेश किया !

धर्मशाला की दूसरी मजिल मे हम ठहर गए ! सागर अपने

पत्र-वत्र लेने के लिए डाकखाने चला गया। डाकखाने का बाबू, एक कश्मीरी पंडित था। नाम था उन का विश्वनाथ शर्मा। बड़ा ही सज्जन, शिष्ट, नम्र और विद्वान्। एक और ब्राह्मण को साथ में लेकर, वह सागर के साथ ही धर्मशाला में आ पहुँचा। अत्यन्त प्रेम और भक्ति-भाव प्रदर्शित करता हुआ बोला : पहलगाम में जैन - भिक्षुओं का प्रथम ही आगमन हुआ है। धन्य भाग्य हैं हमारे, जो आप जैसे त्यागी-सन्तों के दर्शन का हमें भी अवसर मिला। इस प्रकार, कुछ देर कुशल-संवाद चलता रहा। दोपहर को उन्हीं के यहाँ से हम आहार-पानी लाए।

दोपहर को लगभग सवा बारह बजे, श्रीनगर का संघ भी आ पहुँचा, स्पेशल बस लेकर। नर, नारी, युवक, बच्चे, प्रौढ, बूढे— पूरी लारी भरी हुई। उनके विशेष आग्रह पर, स्थान-परिवर्तन करना पड़ा। एक होटल के ऊपर, दो अलग कमरों में पहुँच गए हम। भोजन के बाद, श्रीनगर के 'श्री-संघ' की भाव-भीनी विनती से, एक-सवा घंटे तक, कथा का प्रोग्राम चलता रहा। कथा के पश्चात्, श्रीनगर के संघ ने जल्दी-से-जल्दी श्रीनगर पहुँचने का आग्रह - भरा निवेदन किया, और साथ ही यह भी कहा : कश्मीर में तो अपने संतों का कम ही आना होता है। हमारे सौभाग्य से ही, आप का इधर आना हुआ है। कृपया यह चातुर्मास तो श्रीनगर में ही करके, हम पर उपकार कीजिए।"

मैंने कहा : आप के 'श्री-संघ' का हृदय तो मेरे सामने आ गया है उभर कर। परन्तु, हम जम्मू से कश्मीर के लिए चले हैं, वापस जम्मू लौटने का पक्का इरादा लेकर। हमारा यह दृढ़ संकल्प ही, हमारे क़दमों

का जल्दी-जल्दी उठाए फिर रहा है ! आगे जैसा अन्न-जल का सस्कार ! श्रीनगर पहुँच कर जैसी स्थिति होगी, वह आप के सामने आ ही जाएगी !

श्रीनगर का संघ तो चार-पाच बजे वापस लौट गया ! उधर, सध्या के समय, कारे-कजरारे बादल उमड-घुमड कर आकाश में छा गए ! वारिश ने अपनी खूब वहार दिखाई ! ठडी-शीतल हवा ने भी, वारिश का साथ दिया ! और, हम उस ठडी दुनिया में बैठे-बैठे, प्रकृति-नटी की लीला की ठंडी वहार और ठडे नज्जारे देखते रहे !

: १९ :

चला जाता हूँ, हँसता-खेलता !

"चला जाता हूँ, हँसता-खेलता, मौजे हवादिस से !
अगर आसानियाँ हों, जिन्दगी दुशवार हो जाए !!"

नयनाभिराम लिद्दर घाटी के बीच, ७,००० फीट की ऊँचाई पर स्थित, 'पहलगाम' ससार-भर में प्रसिद्ध है ! जिन्हें कश्मीर के प्राकृतिक-सौन्दर्य अथवा वहाँ के ग्राम्य-जीवन का अवलोकन करना हो, वे पहलगाम जाए बिना, अपनी चाह पूरी नहीं कर सकते ! सुरम्य दृश्य, गगनचुम्बी हिमाच्छादित पर्वत-शिखर, हर तरफ बिखरे हुए चश्मे, पर्वतीय नदियाँ, तथा तम्बू लगाने के लिए हरे-भरे मैदान— प्रत्येक व्यक्ति के मनोरंजन के लिए काफी हैं ! सैलानी अपने मन बहलाने के लिए, पहाड़ों पर चढ़ना, वनो-जगलों में घूमना-फिरना, घुड-सवारी करना, या एकान्त में विश्राम करना पसन्द करते हैं !

कश्मीर की उच्च पर्वत-मालाओ के सुन्दर दृश्यो को, समीप से देखने के लिए, पहलगाम सब से उपयुक्त स्थान है ! प्रभात-वेला में, अम्बर-चुम्बी हिमाच्छादित पर्वतो के उच्चातिउच्च शिखरो के सुन्दर मन-भावन दृश्य, बडे ही सुहावने दृष्टिगोचर होते है ! उस समय दर्शक



अनुभव कर रहा होता है कि, देवताओ ने इस सुषमा-नगरी के अनुपम आनन्द लेने का मेरा चिर-पोषित सकल्प पूरा कर दिया है !

पहलगाम के चारो ओर, पर्वतो के वक्ष-स्थल पर हरे-भरे वृक्षो के बीच, सकरी पगडडियो से चलने से, ऐसा प्रतीत होता है, मानो हम स्वर्ग की राह पर चल रहे हैं ! इस की उपत्यकाएँ, अधित्यकाएँ और गगन-स्पर्शी हिम-शिखर, आज तक अनेक कवियो, कलाकारो एवं अन्वेपको की लेखनी तथा तूलिका के विषय बने हुए हैं ! जिधर भी देखिए, उधर ही छटा निराली है ! यो कहिए कि, यहाँ सर्वत्र ही 'स्विटजरलैंड' का-सा सौन्दर्य बिखरा पड़ा है ! ऐसा प्रतीत होता है, मानो प्रकृति-सुन्दरी ने, प्रसन्न होकर, अपनी कुशल उँगुलियो से, इस पर्वत-राजि का निर्माण करके, अपनी अपार विलक्षण-शक्ति का अद्भुत परिचय देकर, मर्त्य-लोक में ही, स्वर्ग की मन-मोहक छटा उपस्थित कर दी है !

कई बार, दुग्ध-जैसा श्वेत परिधान, इस अनोखे सौन्दर्य को नजर लगने से बचाने के लिए, इन सुन्दर दृश्यों को, अपने शुभ आंचल में छिपा लेता है ! बीच-बीच में बादल के सफेद टुकड़े भी, रिमझिम रस-फुहारियां बरसा कर, पहलगाम की शोभा को मनोरमणीय बना जाते हैं ! हरियाली से सज कर उन्नत-मस्तक पहाडियां, जब बादलो का आश्रय-स्थल बनती हैं, तब शोभा देखने योग्य होती है ! दिन में बादलों की भाग-दौड भी मनोहारिणी होती है ! जब ये बादल किसी भी राहगीर को मार्ग में रोक लेते हैं तो, उस के वस्त्रों के ऊपर नन्ही-नन्ही बूंदें डाल कर ही, उस का मार्ग छोडते हैं ! सूर्य, जो मैदानो में प्रचण्ड अग्नि-बाणो की भीषण-वर्षा करता है, यहाँ पर टीका-टीक दोपहरी में भी, ठिठुरी हुई किरणो को लिए, कभी इस ओर साधारण

चमक दिखा कर, अपना कुछ भी वस न चलता देख, फीकेपन के साथ, पहाड़ों में मुख छिपा कर चला जाता है !

इन्हीं सब कारणों से, पहलगाम, प्राकृतिक सौन्दर्य - प्रेमियों तथा सैलानी व्यक्तियो के लिए, आकर्षण-केन्द्र वना हुआ है ! ग्रीष्म-ऋतु में तो, यह रमणीय नगरी, मैदान से आए, भीषण लू और भारी गर्मी से थके-हारे व्यक्तियों को, शीतल तथा सुगन्धित वायु और फिर से नूतन-शक्ति प्रदान करती है ! प्रकृति-नटी का लीला-क्षेत्र पहलगाम, सैलानियों का एक प्रमुख-केन्द्र तो है ही; किन्तु, 'अमरनाथ' की यात्रा के क्षणों में, भीड-भाड के कारण, इस का महत्त्व और भी वढ जाता है ! उस समय, यहाँ की छटा देखने के योग्य होती है ! दिल्ली, आगरा, बम्बई, गुजरात, काठियावाड़, मालवा, पंजाब आदि दूरस्थ नगरों और प्रदेशों के यहाँ इस मौसम में, अनेक लोग प्रति-वर्ष आया करते हैं ! वास्तव में, सैलानियो के लिए, कश्मीर में सब से अधिक ठहरने का उपयुक्त स्थान है ही पहलगाम ! दो-दो, तीन-तीन, चार-चार महीने यहाँ होटलों, कोठियों और तम्बुओं में ठहर कर, सैलानी लोग कश्मीर के स्वर्ग की ठडी बहारें लिया करते हैं !

हम भी, यहाँ पर छह दिन तक ठहरे ! जबलपुर के जगशी भाई, नागजो भाई का एक सम्पन्न परिवार, उन्हीं दिनो यहाँ आया था ! एक महीना ठहरने का प्रोग्राम था उनका ! "एक महीना आप भी यहीं ठहरिए, और हमें प्रतिदिन कथामृत का पान कराइए ! आप को यहाँ किसी तरह का कष्ट नहीं होगा" —ऐसा उन का प्रबल आग्रह चलता रहा ! परन्तु, हमारे पास समय अत्यल्प था ! इसलिए, हम उस प्रेमी परिवार की भावना को साकार न कर सके ! एक दिन— सिर्फ एक दिन ही, हम उन्हें भागवती कथा सुना सके ! उन दिनों

बारिश का मौसम चल रहा था वहाँ ! दिन-रात में कई-कई बार बारिश अपनी खूब बहार दिखा जाती थी ! वर्षा और ठंडी-शीतल हवा के साथ, पहाड़ो की चोटियो पर नया हिम-पात भी होता रहता था ! ठंडक और सर्दी का क्या ठिकाना ? प्रायः बारह बजे के बाद, मौसम बदल जाता था ! बादलो से आकाश घिर जाता था ! इधर ी सांझें प्राय· वर्षा से भीगी होती थीं !

बम्बई वालो का एक 'पूर्णिमा गुजराती वेजिटेरियन होटल' भी है यहाँ पर ! होटल के संचालक भाई नटवर शाह और सुशीला बहन, हमारी काफी सेवा करते रहे ! प्राय. प्रतिदिन, उनके यहाँ, मैं आहार के लिए जाता रहा! डाकखाने के बाबू पंडित विश्वनाथ जी भी, अत्यन्त निकट सम्पर्क में रहे हमारे ! प्रायः प्रतिदिन शाम को वे हमारे पास आते रहते थे ! गीता-पाठी होने के साथ-साथ, थोड़ा संस्कृत का भी बोध-अभ्यास रखते थे ! बड़े ही भक्तिशील और सहृदय व्यक्ति थे ! गीता तो उन के रोम-रोम में रमी थी ! अत्यत मधुरता के क्षणों में, गीता के विषय पर, उन के साथ चर्चा-वार्ता चलती रहती थी ! झूम-झूम कर, गीता के श्लोक सस्वर सुनाते हुए, वे भाव-विभोर हो उठते थे ! एक दिन, पूर्णिमा-होटल में आहार के लिए गया तो, भाई नटवर शाह बोले : पंडित विश्वनाथ जी आप की विद्वत्ता, ज्ञान-गम्भीरता और योग्यता की बड़ी प्रशसा कर रहे थे ! उन का तो रोम-रोम प्रसन्न हो रहा था, आप के सान्निध्य का लाभ उठाकर !

और, मैं अपने-आप को खोजता हुआ-सा, शायर की इस बात पर मन-ही-मन विचार कर रहा था —

"लोग कहते हैं कि हैं, आप निहायत क़ाबिल !
मैं इसी सोच मे रहता हूँ कि, किस काबिल हूँ ?"

पहलगाम से आठ-नौ मील आगे, ९,५०० फीट की ऊँचाई पर स्थित 'चन्दनवारी' भी, एक रमणीय एवं दर्शनीय स्थान है! विशेषत, नदी के ऊपर बर्फ का पुल देखने योग्य है यहाँ पर! हमारे यात्री-दल का भी विचार हुआ कि, चलो 'चन्दनवारी' तक घूम-फिर आएँ! बर्फ का पुल देख आएँ! और, इस विचार के फलस्वरूप, ८ मई के सुबह, आठ बजे कूच कर दिया हमने, चन्दनवारी की ओर! आकाश में बादल छाए हुए थे! लिद्दर घाटी में से गुजरती हुई, बर्फीली-ठडी हवा, तीर की तरह सीनो को चीर रही थी! कटा-फटा और ऊबड-खाबड पहाडी रास्ता, घने जगल में से होकर, लिद्दर नदी के किनारे-किनारे चल रहा था! पहाडियो पर घूम-घूम कर जाता हुआ पथ, कुछ-कुछ दूर जाकर, हर मोड पर, तीव्र गति से बहती लिद्दर नदी को छू जाता था! रास्ते की चढाई थका देने वाली थी! टेढे-मेढे और विकट उतार-चढ़ाव के रास्ते, हमारे साहस को बार-बार चुनौती दे रहे थे! परन्तु, हम थे कि, इन कठिनाइयो से टक्कर लेते हुए, आगे बढ रहे थे! भँवर की भयकरता देख कर, क्या नाविक कापता या रुकता है कभी? :—

"भँवर के डर से जो काँपा, वोह नाखुदा कैसा?
इसी हयात के नुकते को बार-बार समझ!!"

मार्ग में इतनी सुन्दर दृश्यावलियाँ थीं कि, हम सब कष्टो को भूल गए! पर्वत-प्रदेश का भोर-शीतल समीर, बीच-बीच में नन्ही-नन्ही बून्दो और फुहारो का आगमन, चीड और देवदार की नयनाभिराम दृश्यावलि, ऊँची चट्टानों पर से लिद्दर नदी का वेगशील जल-प्रपात! मन पुलक-पुलक, उठा, प्रकृति के उस रूप-वैभव को देखकर! लेकिन,



अपने सहयात्री युवक-वर्ग के साथ, पहल्गाम से चन्दन वाढी के दुर्गम-पथ पर !

आज हमें रास्ते में कई जगह भयकर खतरो से खेलना पडा ! चन्दनवारी के एक मील रहते तो, रास्ता ही वद हो गया ! रास्ते में वर्फ पड़ी हुई थी ! इधर-उधर कहीं भी पैर टेकने को जगह नहीं थी ! ऊपर पहाड की चोटी तक वर्फ की सफेद चादर बिछी पड़ी थी ! जान हथेली पर रख कर, चढ गए हम, उस वर्फीली पहाडी पर ! पैर फिसल-फिसल जाते थे, कभी इधर, कभी उधर ! और, वर्फ के नीचे ही वह रहा था, जोरदार पानी का नाला ! नाले से नीचे थी, लिद्दर नदी की विशाल चट्टानें और उन चट्टानों से टकरा रहा था, पानी का तीव्र प्रवाह ! जरा-सा पैर फिसले या नजर चूके तो, हड्डी-पसली सव चकनाचूर ! मौत को भी चैलेंज दे रहे थे, दरअसल, जीवन के उन क्षणों में हम ! दिल में जरा भी डर नहीं था ! उत्साह की अगडाई ले रहा था, मन तो अन्दर में ! जीवन के सच्चे राही को तो इन सकटों और आपदाओं के साथ जूझने में, नव-नवीन शक्ति का वरदान मिलता है ! वह तो, खतरो के सामने भी, सीना तान कर वोल उठता है —

"चला जाता हूँ, हँसता-खेलता मौजे हवादिस से !
अगर आसानियाँ हो, जिन्दगी दुशवार हो जाए !!"

और, जल्दी ही पार हो गए हम उस त्रिकट घाटी से ! मस्ती में झूमते हुए, पहुँच गए हम चन्दनवारी के मैदान में ! वातावरण एकदम सुनसान ! एकदम शान्त ! न कोई वस्ती, न कोई आदमी ! वस, हम ही हम ! सरकारी डाक-वगले का भी एक हिस्सा, हिम-पात के कारण, भग्न-स्थिति में पड़ा हुआ था ! हमें यहाँ एक दूसरा लोक-सा ही लग रहा था ! चन्दनवारी से आगे तो इधर-उधर हिम-ही-हिम दीख पड़ रहा था ! प्रत्येक वस्तु, श्वेत हिम से आच्छादित थी ! ऊँचे-ऊँचे

पहाड़ो की चट्टानो की कठोरता पर, दूधिया रुई का आँचल फैला हुआ था! न आगे नजर आ रहा था कोई वृक्ष या झाड़ी या ऐसी ही कोई जीवित वस्तु! गगन-चुम्बी शैल-शिखरो पर जमा हुआ हिम, जो दिन में सूर्य के ताप से पिघलने की कोशिश में रहता है, और रात्रि में, चन्द्रमा की शीतल-किरणो से जमने के प्रयास में! और, इसी प्रयास में पता नहीं, कितनी रातें, दिन का पीछा करती हुईं गुजर जाती हैं! हिमाच्छादित पर्वतों से घिरा हुआ और बर्फ के फैलावो में अपने को अलग करता हुआ, चन्दनवारी का सौन्दर्य, इस का अपना ही बन जाता है! प्रहरी-रूप में चारो ओर खड़ी हिम-मंडित गिरि-मालाएँ, इसे अलौकिक-रूप प्रदान करती हैं! प्रकृति के इस अलौकिक सौन्दर्य की तुलना किस से की जा सकती है?

चन्दनवारी में लगभग दो-सवा दो घण्टे ठहरे हम! घूमे-फिरे, हँसी-खुशी के वातावरण में! लिद्दर नदी पर दूर तक फैला बर्फ क पुल देख कर, सारा श्रम दूर हो गया! लगभग, सवा दो बजे, हम वह से वापस घूम गए! रास्ते में अब उतार-ही-उतार था! अतः विशे कठिनाई प्रतीत नहीं हुई! कुछ छोटी-मोटी बस्तियाँ भी पड़ती थीं, रास में! बच्चे हाथ फैलाए माग रहे थे—पैसा : 'ओ बाबा! पैसा दो बाबू, पैसा दो... !' निर्धनता तो जैसे इस प्रदेश में साकार हो उठ है! पर, क्या सदा ऐसा ही रहेगा? विज्ञान की प्रगति, क्या इ सह सकेगी? यह ज्वलन्त प्रश्न है, जिस का उत्तर पाने में कुछ सम लगेगा! चलते-चलते सब थक कर चूर हो गए थे आज! मुझे त चलना भार लग रहा था दरअसल! पैर उठ नहीं रहा था! म अन्दर-ही-अन्दर बोल रहा था :—

"उठता नहीं है अब तो, क़दम मुझ गरीब का !
मंजिल से कह दो, दौड़ के ले, मुझ को राह में !!"

किन्तु, फिर भी हमारा यात्री-दल उल्लास में पूर्ण, वाणी में ओज और नयनों में गर्व-भरी दृढ़ता से चल रहा था। और, पहलगाम पहुंचते-पहुंचते, सब मिला कर हमने पाया कि, अधिकांश साथी उल्लास और आनन्द से भरपूर थे। क्यों न होते, इसी लक्ष्य-जय के लिए तो, उन्होंने आज कठिनाइयों तथा संकटों का हंसते-हंसते स्वागत किया था।

: २० :

चिन्ह नहीं मेरी मंज़िल का,....!

चिन्ह नहीं मेरी मंजिल का, अभी दिखाई देता है!
ज्वालामुखी क्रान्ति का उर में, अभी हिलोरें लेता है!!"

जेठ का महीना! दिन के बारह बजे! और, हम पहलगाम से वापस लौट चले! पहलगाम छोड़ने पर ऐसा लगा, जसे अपना कोई सगा-सहोदर पीछे छूटा जा रहा है! यात्रियों की तरह निर्मोही बन कर, हम भी उसे पीछे छोड़ आए किन्तु, क्या उसका स्मरण, जो नस-नस में व्याप गया है, उसे भी कहीं पीछे छोड़ा जा सकता है?

लिद्दर नदी के तीव्र प्रवाह के साथ-साथ, सड़क से चल दिए हम! नदी की प्रवाहशील धारा, बड़ी उमंग से हिलोरें ले रही थी! और, सूर्य के प्रकाश में, उसके क्षण-क्षण में बदलते हुए रूप-रंग, सुन्दर प्रतीत हो रहे थे! पर, आज मन में कोई विशेष उल्लास नहीं था! जाते हुए जो मार्ग अत्यन्त आकर्षक लग रहा था, वही आज फीका-फीका-सा लग रहा था! अपने-आप में खोये-खोये-से चल रहे थे आज हम! न मालूम, मानव का मन, प्राचीन के प्रति इतना उदासीन और नवीन के प्रति इतना आकर्षित क्यों होता है? संस्कृत के कवि की इस उक्ति को मैं

बार-बार गुनगुना रहा था :—

"परिचित-जन- द्वेषी लोको, नवं नवमीहते !"

खैर, गणेश-पुरा में रैन-बसेरा किया और अगले दिन वर्षा में भीगते-भागते, आ पहुचे मटन में, लाला कृष्णलाल के बगीचे में ! ११ मई के दोपहर को आहार-पानी करके, अनन्तनाग जा पहुचे ! जम्मू से चलने के बाद, यदि बडा नगर आया, तो वह अनन्तनाग था ! मैदानी नगरों की तरह खूब आबाद ! अच्छी चहल-पहल की दुनिया ! यहा पर भी चश्मे बहुत हैं ! चश्मों की बहुलता के कारण ही, इस स्थान का नाम अनन्तनाग पड़ा है ! अनन्त का अर्थ, अनेक और नाग का अर्थ, चश्मे ! गन्धक का चश्मा भी है यहां पर एक; जिस से गर्म जल निकलता है ! चश्मे के ऊपर ही 'मूर्ख-महामण्डल' के कार्यालय में ठहरे थे हम ! "अब हम सब मूर्ख-महामण्डल के सदस्यों में शामिल हो गए हैं"—युवको की इस विनोद-भरी चुटकी से खूब मनोरंजन हुआ ! कुछ अमृतसरी वैष्णवो और कुछ खत्रियो के घर अच्छे प्रेमी हैं ! महिलाओ के आग्रह पर, कथा का रग भी जमा ! और, १२ मई को लगभग दस बजे, आगे के लिए अभियान कर दिया हमने ! झेलम नदी को पार करके, खन्नाबल पहुँचे तो, आगे ऊँचे-ऊँचे सफेदे के वृक्षों ने हमारा स्वागत किया ! सडक के दोनों ओर, सत्तर-अस्सी फीट ऊँचे वृक्षो की कतारें, बडी ही मन-भावन लग रही थीं ! सफेदे की पक्तियो के बीच से कदम जल्दी-जल्दी आगे बढ रहे थे ! सोलह मील की लम्बी यात्रा तय करके, आज अवन्तीपुर पहुचने का प्रोगाम था हमारा ! लबी मंजिल और वक्त थोडा । कवि की यह भाव-लहरी कदमों को जोश दे रही थी :—

"चिन्ह नहीं मेरी मंजिल का, अभी दिखाई देता है !
ज्वालामुखी क्रान्ति का उर मे, अभी हिलोरें लेता है!!"

अब, हम समतल मैदान में, कश्मीर घाटी के बीच से चल रहे थे ! कश्मीर की यह घाटी ८५ मील लम्बी और अधिक-से-अधिक २५ मील चौडी है ! झेलम नदी इसके बीचों-बीच गुजर कर, इसको दो हिस्सो में बांट देती है ! पाच-छह मील चलने के बाद, बिजबिहारा, का एक बडा कस्बा आया, सडक के किनारे पर ही ! किसी समय, यहा पर बौद्धो का एक विशाल विद्या-विहार रहा है ! झेलम के परले पार के भग्नावशेष, आज भी इस तथ्य की साक्षी दे रहे हैं ! 'बिजबिहारा' विद्या-विहार का ही अपभ्रंश रूप है— इस तथ्य से कौन इनकार कर सकता है? यहां पर शिव-मन्दिर के उद्यान के आँगन में, एक गोलाकार डेढ़ मन का पत्थर पडा है ! जन-श्रुति है कि, इस पत्थर के गिर्द, यदि गोलाकार में ग्यारह आदमी खडे हो जाएं और उन में से हर एक अपने दाहिने हाथ की तर्जनी, पत्थर से लगाकर 'का ! का !' पुकारे तो, पत्थर एकदम ऊपर उठ जाता है ! जम्मू से ही इस लोक-श्रुति को हम सुनते आ रहे थे ! इस जन-श्रुति की सत्यता को जाचने-परखने के लिए, हमारे यात्री-दल ने बहुतेरा उपक्रम किया ! दो कश्मीरी भी बुलाकर लगाए ! पर, चमत्कार कुछ नजर आया नहीं ! लोगों की बात कोरी गप्पबाजी ही साबित हुई ! आज के वैज्ञानिक युग में, ये बातें क्या मूल्य-महत्त्व रखती हैं— कुछ समझ नहीं आया ! पूछने पर कश्मीरी लोग बोले : उठ तो जाता था यह पत्थर ! आज तो, इस पर आप की छाया पड गई मालूम देती है ! उन की इस बात पर खूब हँसी आई !

यहाँ पर झेलम के तट पर, चिनार के वृक्षो का एक बगीचा है ! चिनार के अतिरिक्त बगीचे में दूसरा वृक्ष नाम को भी नहीं है ! इस बगीचे में एक बड़ा भारी, ऊँचा, विशाल चिनार है ! कहते हैं, यह कश्मीर में सब से पुराना और विशाल चिनार है ! उसके ऊपर लगे हुए, सरकारी-नामपट्ट पर लिखा था— इस चिनार के तने की मोटाई का व्यास ५२ फीट है ! दोपहर के समय भी, सूर्य के दर्शन नहीं होते इस बाग में ! क्योंकि, चिनार के पेड वट-वृक्ष की तरह खूब सघन और फैले हुए हैं ! चिनार का वृक्ष वास्तव में कश्मीर का सबसे अधिक शोभायमान वृक्ष है ! ऊँचाई में यह ७० फीट से भी अधिक होता है ! कहा जाता है कि, चिनार को मुगल-शासक ईरान से लाए थे ! चाहे इतिहास के पन्ने मिट भी जाएँ, चिनार सदा मुगल-शासन की याद दिलाता रहेगा !

अस्तु, शिव-मन्दिर के आँगन में, एक विशाल चिनार की ठडी-शीतल छाया में, घटा-भर आराम-विश्राम किया हमने ! बडा सुन्दर दृश्य था ! सामने ही झेलम—वितस्ता नदी बह रही थी ! इसी वितस्ता नदी की प्रशस्ति में, एक दिन कश्मीर के महाकवि क्षेमेन्द्र ने कहा था : वितस्ता मोक्ष-लक्ष्मी के गले में पड़ी मुक्ता-माला की तरह सुन्दर है ! वह अपनी चचल लहर-रूपी भृकुटि-जाल से पापो को डाटा करती है ! उसकी लोल-लहरी में, जिसके रज-कण घुलते रहते हैं, वह कश्मीर-मडल समस्त सम्पदाओं का घर है —

"वितस्तेत्यस्ति तरिणी मोक्ष-हार-वल्लरी,
रिगत्तरङ्गभ्रूभङ्गैस्तर्जयन्तीव कल्मषम् !
तथास्ति लोल-लहरी क्षाल्यमान-रजोव्रजं,
कश्मीर-मण्डलं नाम मण्डलं सर्वसम्पदाम् !!"

अभी हमारा रास्ता लम्बा था ! इसलिए, जल्दी कदम बढ़ाए वहाँ से ! चलते-चलते अवन्तीपुर से तीन मील रह गए तो, थक कर एक चिनार की छाया में बैठ गया हमारा क़ाफला ! बाबू सत्यप्रकाश तो, आज बहुत ही थक गया था ! अनन्तनाग की ओर से, एक चमचमाता कार आती देख कर, वह युवक हँसी के स्वर मे सोहनलाल डोगरा से बोला : अरे कार को ठहरा कर मुझे इस में बिठला दो तो, काम ही बन जाए ! डोगरा भी डोगरा ही था ! जा डटा सडक पर ! और, ठहरा ली कार ! हमें बैठे देख कर एक वरिष्ठ अधिकारी कार से नीचे उतरा ! बातचीत से मालूम हुआ, वह कश्मीरी पडित हैं ! हमारी ओर उन्मुख होकर बोला आइए, बैठ जाइए ! कार में काफी जगह खाली है !

मैंने कहा : हम तो किसी भी सवारी में नहीं बैठते ! हमेशा पैदल ही चलते हैं ! हमारे साथ के ये युवक, आज थक गए हैं, चलते-चलते! इन्हें बिठा लीजिए ! आज अवन्तीपुर ठहरना है हमें ! वहाँ उतार देना इन्हें ! अत्यन्त प्रसन्नता के क्षणों में, वह कश्मीरी पडित सत्यप्रकाश, अशोककुमार और सेवक पृथ्वीसिंह को कार में बिठा कर हवा हो गया ! कितना सम्भ्रान्त, शिष्ट तथा मानवता का पुजारी था वह—मन अन्दर-ही-अन्दर सोच कर रह गया !

सूरज ढल रहा था और हम अभी बैठे थे, अवन्तीपुर से तीन मील की दूरी पर ! मजिल का खयाल आते ही, उठे और चल पडे तेज क़दमो से, अपने मार्ग पर ! थके-हारे थोडा आगे बढ़े तो, सडक मिली, बिल्कुल कटी-फटी और एकदम खराब ! पैर में मेरे फटी थी बिवाई ! उस ऊबड-खाबड़ राज-पथ पर चलते हुए, कितना - कैसा दर्द हो रहा था—यह तो अनुभवी ही जान-समझ सकता है ! और, इतने में ही एकाएक शुरू हो गई, सड़क पर ट्रकों और गाड़ियों की घुडदौड !

क़ाज़ीकुण्ड से एकदम सैंकड़ो गाड़ियाँ छूटीं तो, हमें उस गई-गुज़री सड़क का भी मोह छोडना पड़ा ! वरावर में पगडडी भी कहाँ ? रोडियो और गिट्टियों पर से ही गुज़रते रहे ! उस वक्त की हैरानी-परेशानी को दिल अब भी याद कर लेता है कभी-कभी ! हैरानियो और परेशानियो में से गुज़रते हुए भी, हम अपनी राह पर बढ़ते रहे ! और एक-डेढ़ घटा दिन रहते-रहते, हम-अवन्तीपुर पहुँच ही गए !

अवन्तीपुर, यो देखने में अच्छा वडा क़स्वा है ! लेकिन, आवादी सब मुसलमानो की है ! एक— सिर्फ एक घर कश्मीरी-ब्राह्मण का है ! पडित मोतीलाल, अपनी वुढिया माता, पुत्र और पुत्री के साथ, लका में विभीपण की तरह अकेला ही, मोर्चे पर डटा हुआ था ! प्रसन्न मुद्रा से आगे वढ़ कर स्वागत किया उसने हमारा ! अपने मकान की दूसरी मंजिल के कमरे खोल दिए ठहरने के लिए ! सन्त - सेवा तथा अतिथि - सत्कार का अवसर पाकर, आज उस कश्मीरी पंडित का तन-मन, हर्ष के कारण नाच रहा था !

: २१ :

कुछ चीज़ है कि हस्ती, ...!

"यूनानो मिस्र रोमां, सब मिट गए जहाँ से;
अब तक मगर है बाक़ी नामोनिशाँ हमारा !
कुछ चीज है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी;
सदियों रहा है दुश्मन दौरे ज़मां हमारा !!"

इधर, भास्कर ने भूतल पर, अपनी सुनहरी किरणों का जाल बिछाया और उधर, हम अवन्तीपुर से प्रयाण करने के लिए सन्नद्ध हो गए ! युवक-मडल अभी तैयारी में सलग्न था ! हम धीरे-धीरे चल दिए ! पडित मोती लाल और बा अशोककुमार, हमारे साथ-साथ चल रहे थे ! सडक के इधर-उधर दोनो तरफ, दूर-दूर तक दृष्टि में आए पुराने खण्डहर, इस तथ्य की साक्षी दे रहे थे कि, किसी समय अवन्तीपुर एक वैभवशाली नगर था ! राजा अवन्ती-वर्मन ने, इस नगर की नींव डाली थी ! अवन्तीपुर से आध मील के फासले पर, सडक के सहारे ही, एक विशाल भग्नावशेष की ओर सकेत करते हुए पडित मोती लाल जी ने बतलाया — यह पांडवों का मन्दिर, यहाँ का दर्शनीय स्थान है ! हमने देखा, मन्दिर का प्रवेशद्वार, अब भी उसे गौरवान्वित

किए हुए है ! इसकी विशालता, स्थूलपन तथा कारीगरी को देखकर बुद्धि दंग रह गई ! इस मन्दिर का नमूना, मटन के मार्तण्ड-मन्दिर से बिल्कुल मिलता-जुलता है ! वही रचना, वैसा ही पत्थर, उसी तरह की कारीगरी और स्थापत्य-कला, वैसे ही आदम कद मटके, वैसा ही सारा रंग-ढंग ! इन दोनो मन्दिरो का निर्माण, किसी एक कुशल कारीगर के हाथो से ही हुआ है, ऐसा लगता है ! मार्तण्ड-मन्दिर की तरह, इस मन्दिर का ध्वंस भी सिकन्दर 'बुतशिकन' ने ही किया था ! कुछ भी हो, इन खण्डहरो का वैभव आज भी भारत की पुरानी संस्कृति के गौरव की उद्घोषणा कर रहा है ! इन ऐतिहासिक भग्नावशेषों का एक - एक पत्थर, आज भी मूक-भाषा में बोल रहा है :—

"यूनानो मिस्त्र रोमां, सब मिट गए जहां से;
अब तक मगर है बाकी नामो निशॉ हमारा !
कुछ चीज है कि हस्ती मिटती नही हमारी;
सदियो रहा है दुश्मन दौरे जमां हमारा !!"

आध-पौन घटा, जब तक हम उन भग्नावशेषों में घूमते रहे, मन अतीत की गहराइयों में डूबता-उतराता रहा ! आखिर, हमने आगे का मार्ग पकड़ा ! आज सड़क के इधर-उधर शहतूत, बादाम और रयान के उद्यानों की शोभा दर्शनीय थी ! दूर छोटी-छोटी पहाड़ियों पर बादामो के बाग बड़े सुन्दर लग रहे थे ! दो-तीन मील पर, पंडित मोतीलाल जी का भी एक विशाल उद्यान है ! युवक-मंडल तो उनके साथ, उद्यान देखने के लिए चला गया और हम राज-पथ पर ही मन्थर-गति से पद-संचार करते रहे ! युवको के आने पर, हमारे कदमों

: १ :

सैर कर दुनिया की ग़ाफ़िल,....!

"सैर कर दुनिया की गाफिल, जिन्दगानी फिर कहाँ ?
जिन्दगी भी कुछ रही, तो नौजवानी फिर कहाँ ?"

आदमी दुनिया में आए और जिन्दगी की उलझनो और झमेलो में उलझ कर रह जाए, इधर-उधर दुनिया में जो वैभव बिखरा पड़ा है उसे अपनी आखो में ला कर कुछ भी सीख न पाए, दुनिया मे आकर दुनिया की सैर का आनन्द न उठा पाए; यू ही आए और यूं ही चला जाए, भला वह भी कोई आदमी है ? वह भी कोई जिन्दगी में जिन्दगी है ?

वह आदमी ही क्या, जो दुनिया में आकर दुनिया की सैर न करे ? वह आदमी ही क्या, जो दुनिया के गुलशन की सैर करके अपनी जिन्दगी की झोली को आनन्द, उल्लास और प्रकाश से न भरे ?

"सैर" का नाम पढ़-सुन कर शायद किसी का माथा ठनके। "सैर" की बात शायद किसी के दिल - दिमाग में एक अजीब तरह की उलझन पैदा करे। एक सन्त के मुख से 'सैर' का तराना सुन कर शायद, कोई नाक - भौं सिकोड़ने के लिए तैयार हो जाए।

लेकिन, जहा तक समझदारी और वास्तविकता का सम्बन्ध है,

पता लगा कि, नाग के मुँह से निकले हुए विषैले श्वास, उसकी दवाइयों को निष्फल कर देते थे ! चिकित्सक ने नाग की आँखो पर पट्टी बाध दी, जिस से वह स्वस्थ हो गया ! कृतज्ञ होकर, नाग ने चिकित्सक को एक केसर का कन्द दिया, जिस की खेती करने मे धीरे-धीरे पाम्पुर का नाम ससार में उज्ज्वल हुआ !

कश्मीर में केसर की खेती किश्तवार में भी होती है, लेकिन बहुत थोड़ी ! पाम्पुर का नाम ही, इस की खेती के लिए प्रथम आता है ! पाम्पुर की केसर बढिया किस्म की होती है ! पाम्पुर के एक करेवे [ऊंची समतल भूमि] पर केसर की खेती होती है ! क्योंकि, इसके लिए एक प्रकार की पीली मिट्टी की जरूरत होती है, जो केवल वहीं पर मिलती है ! केसर की खेती जुलाई में बोई जाती है और अक्तूबर के महीने में पाम्पुर के करेवो पर केसर फूल उठती है ! केसर के फूलों की भीनी-भीनी महक मन में मस्ती ला देती है ! कार्तिक पूर्णिमा की रात में, लोग केसर के फूलों की सौन्दर्य सुषमा को देखने के लिए आते हैं, और इन करेवो के पास ही, तम्बू लगा कर प्राकृतिक शोभा-श्री को देखकर भाव-विभोर हो उठते हैं ! जहांगीर ने यहीं पर तो कहा था : अगर पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है तो, यहीं है, यहीं है, यहीं है :—

"गर फ़िरदौस वर रुए जमीं अस्त !
हमीं अस्तो हमीं अस्तो हमीं अस्त !!"

केसर के फूलों की शोभा-श्री को आंखों में लाकर, सस्कृत का मनीषी कवि, देखिए, किस प्रकार कल्पना-व्योम में उडता है :—

"स्थलाधिदेवी कुरविन्दशेखर-
प्रभाङ्कुरैः कुंकुमगर्भकेसरैः !
करोति यस्य क्षितिरक्षतायुषं,
जगत्त्रयस्त्रैणविशेषकक्रियाम् !!"

—पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी के मुकुट में जड़ी पद्मराग मणियों के किरणाकुरों की भांति, कश्मीरी-केसर से कश्मीर की धरती त्रैलोक्य-सुन्दरियों के मस्तक पर, अखण्ड सौभाग्य-सूचक तिलक लगाया करती है !

कश्मीर के महाकवि बिल्हण का यह उद्घोष सत्य ही है कि, कश्मीर की धरती कविता और केसर उगलती है :—

"काव्यं येभ्यः प्रकृति-सुभगं निर्गतं कुंकुमं च !"

पाम्पुर से श्रीनगर सिर्फ आठ मील के फासले पर है ! १४ मई के मंगल-प्रभात में ही, हमने श्रीनगर के लिए प्रस्थान कर दिया ! "आज हम अपनी मंजिल पर पहुँच जाएँगे"— इस विचार से सब के हृदय तरंगित हो रहे थे ! और, इस तरंगित वातावरण में, क़दम जल्दी-जल्दी उठ रहे थे ! आकाश में बादल अपनी विचित्र उड़ानों का खेल खेल रहे थे, और हम झेलम नदी के किनारे-किनारे सड़क पर उमगते हुए चल रहे थे ! थोडी दूर आगे बढने पर, 'श्रीनगर-संघ' के प्रमुख लाला कस्तूरीलाल जी अगवानी के लिए आ पहुँचे ! प्रफुल्लता के साथ क़दम कुछ आगे बढे तो, श्रीनगर का 'श्री-संघ' भी स्वागत-सत्कार करने के लिए आ गया ! स्त्री, पुरुष, बूढ़े, युवक और बच्चे — सब हँसते-मुस्कराते चेहरों से, इन दूर के मुसाफिरों का वन्दन-अभिवन्दन कर

रहे थे, और चिनार के झुरमुटों के बीच से, सडक पर साथ-साथ कदम बढ़ा रहे थे ! एक ओर पर्वत-मालाएँ, दूसरी ओर चिनारों की झुरमुट तथा बाग-बगीचे, और इन के बीच में आबाद है, श्रीनगर की सैनिक-छावनी, दूर-दूर तक ! बड़ा ही सुन्दर एव मन-भावन दृश्य दीख रहा था ! इधर, छावनी तथा बाग-बगीचो के नजारे देखते-भालते और चिनार तथा बादलों की छाया-माया में तेजी से क़दम बढ़ाते हुए, शकराचार्य की पहाडी के नीचे पक्के पुल से, हमने झेलम नदी को पार किया और उधर, व्योम-मडल से उतर कर नन्ही-नन्ही बूँदों और हल्की-हल्की फुहारो ने, हमारा भीगा-भीगा स्वागत-अभिनन्दन किया ! नदी के किनारे और सडक के इधर-उधर, चिनारो और बाग-बगीचों की शोभा-श्री देखते ही बनती थी ! इस श्री-सम्पन्नता के कारण ही तो, इस नगर का नाम 'श्री-नगर' पड़ा है ! श्रीनगर की इस स्वर्गोपम सौन्दर्य-सुषमा पर मुग्ध हो कर ही तो, एक दिन संस्कृत के महाकवि का स्वर झंकृत हो उठा था —

"ऋद्धापणं राजपथेनोद्यानोज्ज्वलनिमग्नं,
स्फीतपुष्पफलोद्यानैः स्वर्गस्यैवाभिधान्तरम् !
दिग्जयोपार्जितैर्वित्तजितवित्तेशपनं,
वितस्तापुलिने तेन नगरं निरमीयत !!"

—वितस्ता (झेलम) के तीर पर, उस नरेश ने एक ऐसे नगर का निर्माण किया, जिसके आगे कुबेर की नगरी का वैभव भी तुच्छ जान पड़ता था ! क्योंकि, उस ने दूर-दूर तक दिग्विजय करके धन-दौलत से अपनी राजधानी को भरपूर कर दिया था ! नगर के प्रशस्त राज-मार्गों के किनारे-किनारे, श्री-सम्पन्न दूकानें सजी थीं ! फल-फूलों के

: २२ :

खिलते हुए रंगीन चमन देख रहा हूँ !

'खिलते हुए रंगीन चमन देख रहा हूँ,
फिरदौस नजर दश्तो दमन देख रहा हूँ,
हर सिम्त बहारों की फ़बन देख रहा हूँ,
इक खुल्दे तसव्वर है तेरे हुस्न की तसवीर !
ऐ जन्नते कश्मीर !!"

प्राचीन-काल से कश्मीर की सामाजिक तथा राजनीतिक क्रान्तियों का केन्द्र, श्रीनगर, निश्चय ही कीर्ति और गौरव का नगर रहा है ! यहाँ की प्रत्येक टूटी-फूटी इमारत में अथवा खंडहर में, पुरानी सभ्यता का इतिहास बोल रहा है ! सांप के आकार वाली झेलम नदी, नगर के बीचों-बीच गुजरती हुई, नगर को दो हिस्सों में बांट देती है ! नगर के इन दोनों हिस्सों को मिलाने के लिए, झेलम पर आठ कदल [पुल] बनाए गए हैं ! नगर काफी घना बसा हुआ है ! छह वर्गमील की जगह में कम-से-कम ४०,००० मकान ठूँस-ठूँस कर भर दिए गए हैं ! यही कारण है कि, शहर के अधिकांश भाग गन्दे हैं ! गलियों और तंग बाजारों में पानी सड़ता रहता है ! अस्वच्छ वातावरण में रहने

के कारण, श्रीनगर-निवासी बहुत-सी बीमारियों के शिकार रहते हैं! अनुमान लगाया गया है कि, श्रीनगर में कम-से-कम १०,००० फेफड़ों के रोगी होंगे! बहुत से मकानों में तो सूर्य के प्रकाश की किरणों का प्रवेश तक भी नहीं होता! इस प्रकार, स्वर्ग के साथ-साथ, यहाँ नरक भी देखने को मिल जाता है! अमीराकदल, हरिसिंह-हाई-स्ट्रीट, इधर-उधर एकाध बस्ती, कोठियों और बंगलों के अलावा, साफ-सुथरे इलाक़े कम ही देखने को मिलेंगे! दरअसल, श्रीनगर में देखने के योग्य हैं, मुग़लों के बाग़! फारसी कवि ने सच ही कहा था —

"सुबह दर बागे निशातो, शाम दर बागे नसीम!
शालामारो लालाज़ारो सैरि कश्मीर अस्तो बस्त !!"

—सुबह निशात में, शाम नसीम बाग़ में, शालामार तथा लाला के फूलों की वाटिकाएँ—बस यही तो कश्मीर में देखने योग्य चीज़ें हैं, और कुछ नहीं!

हमारे यात्री-दल का भी विचार हुआ कि, चलें, प्रकृति के उस स्वर्गोपम वैभव को देख आएँ! १७ मई, शनिवार के दोपहर को, एक बजे चल पडा हमारा काफला, कश्मीर की उस प्राकृतिक-छटा को देखने के लिए! शंकराचार्य की पहाडी के नीचे, झेलम के पुल को पार करके, डल झील के किनारे पहुँच गए हम जल्दी ही! चारों ओर पर्वत-मालाओं से घिरी हुई, पांच मील लम्बी यह झील, दस वर्ग-मील में फैली हुई है! एक कृत्रिम बाध अथवा मार्ग द्वारा यह दो हिस्सो में बटी हुई है—छोटा डल और बड़ा डल! इसके पानी को श्रीनगर के कोने-कोने में नहरों द्वारा पहुँचाया गया है! डल झील में सैकड़ो शिकारे और नावें तैर रही थीं! डल झील के पानी में किनारे-किनारे पर,

सैकड़ों हाऊस-बोट, सजे-संवरे खड़े हुए थे! सैर करने के लिए शिकारे, लकड़ी, सब्जी, दूध, फल आदि सामान ढोने के लिए नावें, और पानी में रहने के लिए हाऊस-बोट—ये तीन कश्मीर की अपनी विशेषताएं हैं! आधा श्रीनगर तो पानी में ही बसता है! पानी के अन्दर बसने वाली इस शोभा को देखते हुए, हम डल झील के किनारे-किनारे सड़क पर चल रहे थे! थोड़ी दूर आगे 'नेहरू-पार्क' आ गया! डल झील के अन्दर, यह एक कृत्रिम द्वीप बनाया गया है, और इसे एक सुन्दर पार्क का रूप दे दिया गया है! पार्क में खेलने-कूदने और तैरने की सुविधाएं प्राप्त हैं और एक अच्छे होटल का भी प्रबन्ध है! स्कूल के बच्चे और सैलानी लोग पार्क की सैर का आनन्द ले रहे थे! किनारे पर खड़े खड़े, हमें वहां का सारा दृश्य दीख रहा था! सड़क के सहारे ही, शंकराचार्य पहाड़ी के दामन में, बिजली से चमकाए हुए छोटे-छोटे घरों का दृश्य भी निराला ही था! सामने ही पुराने राजा का 'रंगमहल' नजर आ रहा था, जो अब एक विशाल होटल में परिवर्तित कर दिया गया है!

बढ़िया बतलाते हैं ! उद्यान की प्राकृतिक-छटा देखते ही बनती थी ! उस दिन, वहाँ पर 'शालामार' का स्कूल भी आया हुआ था ! मास्टरों और विद्यार्थियों से बगीचा भरा-भरा दीख रहा था ! हरी-हरी दूब से भरे मैदान में बैठे हुए विद्यार्थियों को, मास्टर लोग शिक्षण दे रहे थे ! चश्मा-शाही उद्यान में एक घण्टा ठहर कर, हम आगे चल दिए और श्रीनगर से सात मील पर 'निशात' गाँव में, एक मुसलमान की बैठक की दूसरी मंजिल में, रात-भर आराम से ठहरे !

अगले दिन यानी १८ मई को, रविवार की सुनहरी प्रभात-वेला में, हम आगे के लिए चल पड़े ! लगभग दो फर्लांग आगे, सड़क के सहारे ही, 'निशात' बाग़ आ गया ! मुगल-बाग़ों में यह सर्व-श्रेष्ठ बाग़ समझा - माना जाता है ! सुबह का सुहावना समय ! एकान्त, शान्त, ठंडा एवं मनोरम वातावरण ! उद्यान के द्वार में प्रवेश करते ही फैलीनड्ला की पीली क्यारियाँ अपनी वासन्ती छवि से अभिभूत कर लेती हैं ! गुलाब के रंग-बिरंगे फूलों से भरी हुई क्यारियों के बाद, अनेक फूल हँसते दिखाई देते हैं ! मखमल से भी मुलायम दूब तो, मानो इस बाग के प्राण हैं ! छोटे-छोटे सरोवरों के चारों ओर, नीले पीले फूल झाँक-झाँक कर, सरोवरों के जल में अपना प्रतिबिम्ब निहार कर झूमने-से लगते हैं ! इसके अतिरिक्त, उद्यान की पुष्प-वीथियों के किनारे, गेंदे अपनी छवि से उद्यान की शोभा में चार चाँद लगाते हैं ! प्रकृति के इस मनोरम वातावरण पर कौन अभागा मुग्ध न होगा ? उद्यान में इधर-उधर चङ्क्रमण करते हुए, और प्रकृति-नटी के उस नयनाभिराम वैभव को देखते हुए, ऐसा लग रहा था, मानो स्वर्ग ही पृथ्वी पर उतर आया है !

लगभग १७८५ फीट लम्बा और ११०७ फीट चौड़ा, यह बाग़

सात मंजिलों में बंटा हुआ है। तीसरी, चौथी और पांचवीं मंजिल अन्य मंजिलों से बड़ी हैं और एक-दूसरी से लगभग १८ फीट ऊँची हैं। बाग के बीचो-बीच तालाबों की पंक्ति और छोटे-छोटे जलाशय, एक-दूसरे के साथ नहर द्वारा मिले हुए हैं। यह तालाब काले-चिकने पत्थरों के बने हैं, और चारों ओर से फूलों की छोटी-छोटी क्यारियों से आभूषित हैं। तालाबों तथा नहर के अन्दर सैकड़ों फव्वारे हैं, जो बाग की शोभा बढ़ाते हैं! कुछ फव्वारे १० फीट ऊँचे हैं, और पानी की फुहार दूर तक हवा में फेंक देते हैं। सैलानी लोगों के बैठने के लिए आस-पास हरी-हरी घास के मैदान हैं। उस खिलते हुए रंगीन चमन की बहार को देखकर, मन खिल उठा! उर्दू के शायर की यह शायरी तन-मन-नयन को मस्त बना रही थी :—

"खिलते हुए रंगीन चमन देख रहा हूँ,
फिरदौस नजर दश्तो दमन देख रहा हूँ,
हर सिम्त बहारों की फ़बन देख रहा हूँ,
इक खुल्दे तसव्वर है तेरे हुस्न की तसवीर!
ऐ जन्नते कश्मीर!
हर फूल यहाँ गैरते-गुलजारे-अदन है,
हर खार यहाँ रश्के-सद सरू-ओ-समन है,
तू खुल्द की रंगीन बहारों का वतन है,
या वादिए-ईमन से चुराई हुई तसवीर?
ऐ जन्नते कश्मीर!

बहते हुए चश्मों में यह नग़मों का तलातुम,
गाती हुई जल-परियों का यह शोख़ तक़ल्लुम,
बढ़ती हुई मौजों का यह पुरकैफ़ तरन्नुम,
हर मौज मे यह कौसरो-तस्नीम की तासीर !
ऐ जन्नते कश्मीर !"

निशात की बहार लेकर, हमारे क़दम आगे बढ़ चले और दो मील चल कर शालामार बाग़ में जा पहुँचे ! शालामार बाग़ डल झील के साथ एक नहर से मिला हुआ है, जो ३५ फीट चौडी और मील-भर लम्बी है ! नहर के दोनो ओर छायादार चिनार और बेद के वृक्ष लगे हैं ! इस के दो हिस्से थे ! पहला हिस्सा फरहबख्श कहलाता था, और दूसरा फैजबख्श ! इस बाग़ की भी अपनी शोभा निराली ही है ! कश्मीर के मुगल-गवर्नर जब्बारखां ने १६३० ई० में, इस बाग़ का विस्तार कराते समय कहा था : अगर स्वर्ग में कहीं खुशी और ऐश्वर्य है तो, पृथ्वी पर फरहबख्श या फैजबख्श दो स्थानों में है :—

"हस्त अगर दरे आलम ऐशोतरब ख़ल्दे बरीन !
फैज़बख्श अस्त व फ़रहबख्श अस्त बरोय ज़मीन !!"

शालामार १७७० फीट लम्बा और ६२१ से ८०१ फीट तक चौडा है ! निशात की तरह इसमें भी मंजिलें हैं ! बाग़ के बीच छोटे सरोवरो की एक पंक्ति है, जिस का पानी नहर द्वारा आता है ! नहर दो फीट से अधिक गहरी नहीं होगी ! लेकिन, २७ फीट से ४२ फीट तक चौड़ी है ! तालाब और नहर चमकीले पत्थरों से बने हैं, जो काले संगमरमर जैसे लगते हैं !

भीड-भाड की दुनिया के लिए ! सुबह के एकान्त क्षणों में, उद्यानों की जो छटा देखी थी, वह अब कहाँ थी वहाँ ? मेले-ठेले में मन कुछ रमा नहीं ! अत निशात गाव में अपने स्थान पर ही आकर विश्राम किया !

१९ मई के सुबह, डल-झील का नजारा देखते हुए, चल पडे श्रीनगर की ओर ! सुबह का सुहावना समय ! डल-झील का दृश्य बडा मनोरम लग रहा था ! डल-झील के किनारे पर, शकराचार्य की पहाडी का दृश्य भी मन-भावन लग रहा था ! यह पहाडी वैदिक-धर्म और बौद्ध-धर्म के संघर्ष की कहानी की याद दिलाती है ! शकराचार्य ने इस पहाडी पर, कुछ दिन विश्राम किया था; तभी से यह पहाडी शकराचार्य की पहाडी के नाम से प्रसिद्ध हो गयी ! पहाडी काफी ऊँची है ! इस के ऊपर से, सारे श्रीनगर का दृश्य बडा मनोरम प्रतीत होता है ! डल-झील में पक्ति-बद्ध खड़े हाऊसबोट, रेलगाड़ी के डब्बे-जैसे लगते हैं ! और, झेलम-नदी तो ऐसी प्रतीत होती है, मानो कोई मतवाली नागिन जमीन पर रेंगती हुई, इठलाती-बलखाती हुई-सी जा रही हो ! इस प्राकृतिक छवि का निरीक्षण करते हुए, हम गिरनार-होटल में आ पहुँचे, अपने स्थान पर !

: २३ :

यह छावनी छाती हुई परबत पै घटाएँ !

"यह छावनी छाती हुई परबत पै घटाएं,
यह झूमती गाती हुई धरती की फ़जाएँ,
पटकी हुई, लहकी हुई, यह मस्त हवाएँ,
किस शाइरे फ़ितरत की तू ख्वाबों की है ताबीर
ऐ जन्नते कश्मीर !"

घाले व्यक्तियों को सडक पर चलने से रोक रही थी ! इस सब दौड-धूप की दुनिया को देखते-निरखते सडक के किनारे पर चल रहे थे हम ! श्रीनगर से नौवें मील पर दो सडकें हो गईं — एक चली गई सीधी बारामूला को श्रौर दूसरी मुड गई गुल-मर्ग को ! अब हम ने गुल-मर्ग का राज-पथ पकड लिया ! सड़क के दोनो श्रोर धान के खेत पानी से भरे खड़े थे ! यहाँ-वहाँ दूर-दूर तक पानी-ही-पानी दीख रहा था ! मानव के तन में रक्त-वाहिनियो की भाति तथा पीपल के पात के गात में शिराश्रो की भाति, कश्मीर की भूमि में जल-वाहिकाश्रो का जाल-सा पुरा हुश्रा है ! चारो तरफ पानी का प्रवाह बह रहा था ! कश्मीरी पुरुष श्रौर महिलाएँ धान के खेतो में खूब मेहनत कर रहे थे ! निरन्तर चलने से कुछ थकावट-सी महसूस हुई श्रौर हम सडक के सहारे एक चिनार की ठडी-शीतल छाया में बैठ गए ! एक बूढा, एक प्रौढ़ श्रौर एक बारह-तेरह साल का लडका, सडक से गुजर रहे थे ! हमें देखकर वे भी छाया में श्रा गए ! गवैये थे वह ! उन्होने हमें एक कश्मीरी लोक-गीत सुनाया, श्रपनी लहर-बहर में ! दो-चार व्यक्ति श्रौर श्रा गए ! महफिल जम गई श्रौर जगल में ही सगीत-लहरी सुनने को मिल गई हमें ! वहाँ से श्रागे बढे तो, श्राकाश में बादलो की दौड-धूप शुरू हो गई ! चौहदहवें मील पर 'मागाम' पहुँचते-पहुँचते, नन्ही-नन्ही बूंदो श्रौर फुहारो ने श्रच्छा स्वागत किया हमारा ! मागाम पहुँचने पर तो मूसलाधार बारिश ने खूब रग दिखाया !

'मागाम' में रैन-बसेरा किया श्रौर श्रागे के लिए रवाना हो गए ! मागाम से टगमर्ग दस मील पडता है ! लग-भग छह-सात मील पार कर लेने पर, फिर व्योम-मडल में कारे-कजरारे बादल घिर श्राए ! बिजली की कड़कडाहट श्रौर बादलों की गड़गड़ाहट से गुलमर्ग के



टगमर्ग से गुलमर्ग की चढ़ाई पर, एक देवदार के झुरमुट में खड़े, प्रकृति की लीला को देखते हुए।

उच्चातिउच्च गिरि-शिखरों के कलेजे भी दहल-दहल जाते थे ! कुदरत की कैसी रंग-भरी बहार थी वह ! दूर सामने, ऊँची पहाड़ की चोटियों पर, छावनी छाती हुई काली घटाओं को देखकर, शायर की ये पंक्तियाँ याद आ रही थीं —

"यह छावनी छाती हुई परबत पै घटाएँ,
यह झूमती गाती हुई धरती की फ़ज़ाएँ,
बहकी हुई, लहकी हुई, यह मस्त हवाएँ,
किस शाइरे फ़ितरत की तू ख्वाबों की है ताबीर ?
ऐ जन्नते कश्मीर !"

हाथ जोड़ कर बोले : आइए, दर्शन दीजए ! आज तो हमारे यहीं ठहरिए, सेवा का मौका दीजिए, हम लोगो को भी ! घटा घिर रही है, रास्ता ख़राब है ! आगे जाना ठीक नहीं हे आज !

उसकी भावनात्मक लहर के कारण, एक घण्टे के लिए ठहर गए ! सरदार बसन्तसिंह जी ने, अपने होटल के ऊपर के दो स्पेशल कमरे खोल दिए ! हमारा ऊपर चढ़ना था और बारिश का शुरू होना था ! बस, ठहर गए तो, ठहर ही गए ! शाम तक बारिश ने दम ही न लिया !

होटल के सामने नीचे सड़क पर ही बसें ठहरती थीं ! बस के आते ही सौ-डेढ़ सौ 'हातो' मजदूर टूट कर पड़ते थे, सैलानियो का सामान लपकने के लिए ! वह उस से आगे, वह उससे आगे ! ऊपर-नीचे, गिरते-पडते सामान लेने की कोशिश करते ! हल्ला-गुल्ला होने पर, पुलिसमैन उन पर छड़ियाँ बरसाते, किसी की टोपी उतार कर फेंकते, किसी को धक्का देते; तो वे गिरते-पडते भागते, भेड-बकरियो की तरह ! मन अन्दर-ही-अन्दर सोच रहा था— कितनी ग़रीबी है, इस दुनिया में ! कैसी दयनीय स्थिति है, इन लोगो की ! एक ओर तो ये अमीरी दुनिया में रहने वाले सैलानी बाबू और दूसरी तरफ ये मजदूर लोग, जो बारिश में खड़े-खडे भीग रहे हैं और बस के आते ही एक-एक बिस्तर और एक-एक ट्रंक पर, कुत्तो की तरह झपटते हैं और पुलिस की छडियाँ पडते ही, भेड-बकरियो की तरह इधर-उधर भागते हैं ! इन्सान-इन्सान में कितना भेद है ! क्या यह दुनिया यो ही चलती रहेगी ? पुरानी दुनिया के इस भेद-भाव से भरे रग-ढग को, क्या विज्ञान की प्रगति सह सकेगी ? कवि का यह क्रान्त-स्वर देखिए, किस ओर सकेत कर रहा है —

अस्तु, मैं अपनी मूल - भावना पर आजाऊं और दिल की बात मस्ती के स्वर में आप के सामने कह जाऊं, तो ठीक रहेगा। जीवन का सच्चा रस तथा सच्ची अनुभूतियों का आनन्द भरा पड़ा है पद-यात्रा के क्षणों में। जीवन की वास्तविक थाती और जिन्दगी के असली अनुभवों का खजाना छुपा पड़ा है घुमक्कड़ी की घड़ियों में। पैदल विहार की मस्ती में जो रसानुभूति है, पैदल घूमने में जो प्रकाश का आवाहन है, उसे ज़बान या कलम पर कैसे लाया जा सकता है? गूंगे के हाथ पर गुड़ रखा जाए, और चखने पर उस का मज़ा पूछा जाए, तो वह बेचारा भला क्या - कैसे बतलाए? अनुभव की बात ज़बान पर कैसे लाए?

ठीक यही बात पद-यात्रा से होने वाली आनन्दानुभूति के सम्बन्ध में भी लागू पड़ती है। घुमक्कड़ी और पद-यात्रा में जो जीवन का रस है, उस का अनुभव ही किया जा सकता है, ज़बान पर उसे लाया नहीं जा सकता। मोटे तौर पर, कलम से तो दिल की बात के इशारे ही किये जा सकते हैं। और, इन इशारों से ही दिल की दास्तान की कुछ-कुछ झांकी मिल जाती है थोड़ी - बहुत भी समझ - बूझ रखने वाले व्यक्ति को! कवि के शब्दों में ही कह दूं, तो बात ज़रा और स्पष्ट हो जाएगी :—

"इशारों से बयां होती है, दिल की दास्तां अपनी।"

सच तो यह है कि, जिन्दगी की सच्ची मस्ती की तरंग में पैदल घूमने वाले यात्री का चित्त प्रसन्नता से भर जाता है! मुरझाये हुए हृदय की कली खिल उठती है! प्रकृति - लीला की नाना प्रकार की नयनाभिराम झांकियाँ आंखों और मन के कैमरे के सामने घूम जाती हैं, जो दिल और दिमाग़ को नयी ताज़गी से भर जाती हैं। घुमक्कड़ी

"यह दुनिया बहुत पुरानी है, रच डालो दुनिया एक नई !
जिस में सिर ऊँचा कर विचरें, इस दुनिया के बेताज कई!!"

अस्तु, मैं कमरे के अन्दर बैठा था, और उमेश मुनिजी बरामदे में खड़े थे। मुनिजी को खड़ा हुआ देखकर, मध्य-प्रदेश के प्रसिद्ध कार्यकर्ता और समाज-सेवी श्री सौभाग्यमल जैन—जो वर्षा में भीगते हुए, गुलमर्ग से श्रीनगर वापस लौट रहे थे—अपने पाँच-चार साथियों के साथ, ऊपर आ पहुँचे, हमारे पास ! वन्दन किया और बैठ गए ! पूछने लगे : आप यहाँ कहाँ ?

"हम भी आगए हैं, इधर कश्मीर की ठंडी दुनिया में—मैंने मुस्कराते हुए कहा !

"आप इधर धर्म-प्रचार की दृष्टि से आए हैं अथवा कश्मीर में घूमने की दृष्टि से ?" —उनका अगला प्रश्न था !

मैंने कहा . यों तो सन्त जिधर भी जाता है, धर्म-प्रचार उसके साथ-साथ चलता ही है। फिर भी, हम कोई धर्म-प्रचार का मिशन लेकर नहीं आए हैं इधर ! पंजाब में घूमते हुए इधर, जम्मू आ गए थे ! विचार हुआ, चलो, कश्मीर की ठंडी दुनिया में भी थोड़ा घूम आएँ ! बस, इस घुमक्कड़ी के विचार ने ही, हमें यहाँ तक पहुँचा दिया !

"अच्छा, इधर तो मुसलमानों की आबादी ही अधिक है ! अगर कोई मुसलमान निरामिष-आहारी तथा सदाचारी हो तो, आप उसके घर से आहार-पानी ले सकते हैं या नहीं ?" —यह उनका तीसरा प्रश्न था !

मैंने सहज-भाव से कहा : क्यों नहीं ! इस में आपत्ति भी क्या है ? जैन धर्म की मूल चिन्तन-धारा तो, जात-पात के पचड़े में विश्वास हो

नहीं रखती ! एक निरामिष-भोजी और सदाचारी मुसलमान के घर से आहार-पानी लेने में मुझे किसी भी तरह की हिचकिचाहट नहीं होगी ! ऐसा करने में, अपना गौरव ही समझूँगा मैं तो !

और भी, समाजिक-मच की अनेक समस्याओं पर, उनके साथ खुलकर विचार-विमर्श चलता रहा ! हमारी स्पष्ट एवं तथ्यात्मक दृष्टि से, उन का तन-मन प्रसन्न था—ऐसा उनकी प्रसन्न-मुद्रा से प्रतीत हो रहा था ! वे श्रीनगर को चले गए और हम कमरे के अन्दर बैठे-बैठे, प्रकृति की नयनाभिराम-लीला को देखते-निरखते रहे !

: २४ :

शूलों का पथ ही सीखा हूँ !

शूलों का पथ ही सीखा हूँ, सुविधा सदा बचाता आया !
मैं ज्वलित-पथ का अँगारा हूँ, जीवन-ज्वाल जगाता आया !!"

"सूली का पथ ही सीखा हूँ, सुविधा सदा बचाता आया !
मैं बलि-पथ का अँगारा हूँ, जीवन-ज्वाल जगाता आया !!"

और, यों ही, बिना रास्ते ही, चढ़ चले हम चढ़ाई की ओर ! सामने, ऊपर जाती हुई पगडंडी नजर आ रही थी ! वर्षा के कारण, कीचड़ और फिसलन का क्या ठिकाना ? पैर जमने ही न पा रहे थे ! साथ के युवक सागर ने तो, एक-दो जगह गिर-गिरकर, कलाबाजी भी खब दिखाई ! आज की चढ़ाई, हमारे साहस को एक खुली चनौती दे रही थी ! पैर फिसल-फिसल जा रहे थे ! पर, दिल का हौसला, उन सब कठिनाइयों को चैलेंज दे रहा था ! सीधी-खडी चढ़ाई करते समय, ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो पाताल से निकल कर आसमान से मिलने जा रहे हैं ! कठिनाई जरूर थी, क़दम कदम पर; फिर भी, मजा आ रहा था ! आकाश से बातें करने वाले, ऊँचे-ऊँचे देवदार के वृक्ष, हमें ऊँचे — और ऊँचे चढ़ने की बलवती प्रेरणा दे रहे थे ! हाँफते-हाँफते थक जाते तो, कहीं खडे हो जाते, कहीं बैठ जाते, कहीं देवदार के ऊँचे वृक्षो के झुरमुठ देखने लगते ! इस प्रकार, उस प्राण-लेवा चढाई से टक्कर लेते हुए चढ़ रहे थे, आगे बढ रहे थे ! कवि की यह क्रान्त-वाणी नया बल प्रदान कर रही थी —

"रग-रग मे लहू को गरमाते, जाते हैं सफर की जय गाते !
हम अहदे जवानी के माते, बूढ़ो का ज़माना क्या जानें ?
तूफान मे किश्ती खेते हैं, कोहसार से टक्कर लेते हैं !
हम जग मे सर दे देते हैं. हम पाँव हटाना क्या जानें ?"

और, चढ़ते-चढ़ते जब हम बहुत ऊपर पहुँच गए तो, दूर ऊपर,

खचाखच भर जाती है! फूलो से भरी उपत्यका, ८,७०० फीट की ऊँचाई पर स्थित चीड और देवदार के सघन जगल से घिरी हुई है! स्वतंत्रता से पूर्व तो, भारतीय सैलानियों के लिए, यहां जगह मिलना कठिन था! अंगरेजो की लीला-भूमि तथा भोग-भूमि थी, एक तरह से यह! लबे-चौडे हरे-भरे विशाल-मैदान में घूमना, सैर करना, गोल्फ खेलना, घुडसवारी का मजा लेना, स्केटिंग करना — ये ही तो सब लीलाएँ चलती थीं, उनकी यहां पर! परन्तु, अब परिस्थितियां बदल गई हैं! और, पर्यटन करने वालों की बढ़ती हुई सख्या, इस बात की साक्षी है कि, सैलानियों को यह स्थान बहुत ही भाया है! सचमुच, गुलमर्ग अपने सौन्दर्य-जाल में सब को बन्दी बना लेता है!

दोपहर बाद, घूमने-फिरने के लिए निकले तो, आकाश सुरमई बादलो से घिरा हुआ था! भीगा-भीगा मौसम सुहावना लग रहा था! बर्फानी हवा के जोरदार थपेडे, हड्डियों को भी भेद रहे थे! ऊँचे-नीचे, विशाल मैदानों में हरीतिमा बिखरी पडी थी! देवदार के वनो को चीरती हुई, सात मील लम्बी ठडी सडक, गुलमर्ग के चारों ओर घेरा-सा डाले हुए है! मैदान में इधर-उधर से गुजरती हुई सडक, बडी भली मालूम दे रही थी! देखते-घूमते एक पहाडी के ऊपर स्थित डाक-बगले में जा निकले! वहां से सारी कश्मीर घाटी की शोभा दीख पडती है! २६,६६६ फीट ऊँचे हरमुख पर्वत की दृश्य-माला देख कर भुलाई नही जा सकती! हिमाच्छादित गिरि-शिखरो की मनोहारिणी शोभा के दर्शन कर, मन न च - नाच उठा! हिम-मडित गिरि-शिखरो के अतिरिक्त, वहां से दूर, कनक-तार की तरह दमकता वुलर झील का पानी भी, आंखों में चमक पैदा कर रहा था! प्रकृति के उस बिखरे वैभव को देख-निहार कर, हृदय एकदम हरा



थके-हारे यात्री, खिलनमर्ग के विकट-पथ पर, विशाल शिला-खडों पर बैठे विश्राम करते हुए ।

हो गया! वस्तुत गुलमर्ग की शोभा अपनी निराली ही है! इधर-उधर देवदार के झुरमुटों में, पहाडियों पर बनी अंगरेजों की कोठियाँ, अपनी अलग ही रूप-लीला दिखा रही थी! गुलमर्ग का कलापूर्ण सौन्दर्य, वास्तव में देवों की लीला-भूमि के समान भव्य है! इस की उपमा के लिए 'इन्द्रपुरी,' शब्द भी फीका जान पडता है! रात को जब राकेश, पृथ्वी पर अपनी चादी बिखेर देता है, और तारे देदीप्यमान हो उठते हैं तो, लगता है कि, परियों के देश में आ गए हैं!

: २५ :

कोई हँस रहा है, कोई रो रहा है !

"कोई हँस रहा है कोई रो रहा है,
कोई पा रहा है कोई खो रहा है !
कोई ताक मे है किसी को है ग़फ़लत,
कोई जागता है कोई सो रहा है !!
कही नाउम्मीदी ने बिजली गिराई,
कोई बीज उम्मीद के बो रहा है !
इसी सोच मे मैं तो रहता हूँ 'अकबर',
यह क्या हो रहा है, यह क्यों हो रहा है !!"

श्रीनगर में सात-आठ घर हैं, जैन-बिरादरी के ! लाला कस्तूरीलाल, लाला प्यारेलाल, मनोहरदास, निरजनलाल, नरेन्द्रकुमार, सुदर्शनलाल, जोगेंद्रलाल आदि सब सघ के सदस्य, सेवा-भक्ति में,एक-से-एक बढ़ कर ! बड़े ही प्रेमी, उदारचेता और सेवा-परायण ! श्रीनगर पहुँचने के बाद, इधर-उधर, जहां भी घूमने-फिरने के लिए गए, सर्वत्र आप की सेवा-भावना, आगे-आगे काम करती रही ! और, श्रीनगर के गिरनार-होटलका

रहे थे ! उस की बात को सुनते-सुनते, मुझे यह शेर याद हो आया :—

"सरे मंज़िल पहुंच सकता नहीं वोह काफ़ला हर्गिज़ !
जिसे रहबर पै भी बेगानए मंज़िल का धोखा है !!"

और, हम चलते रहे, पगडडी से ऊपर चढ़ते रहे ! सह-यात्री युवक, लाला कस्तूरीलाल जी को ज़ोर-ज़ोर से आवाज़-पर-आवाज़ लगाते रहे; परन्तु वहाँ जगल मे कौन-कहाँ सुनता था ? थोड़ा ठीक रास्ता आया तो, सामने दूर पगडडी—जो ठीक, आसान और सीधी थी—से चढ़ते हुए, श्री उमेश मुनिजी और लाला कस्तूरीलाल जी दिखाई दिए ! अब, सब ने महसूस किया कि, वास्तव में, हम गलत पगडडी पर पड गए हैं ! और, आगे आ गया, सघन और भयकर जगल ! ऐसे घने जगल में फस गए कि, रास्ता सूझे ही नहीं, किधर को भी ! यों ही घूमते-फिरते रहे, चक्कर काटते रहे, हैरान-परेशान होते रहे, एक के बाद दूसरी कठिनाई के दौर में से गुज़रते रहे ! किन्तु, उस हरी-भरी दुनिया में, भूल-भटक कर भी, मन प्रसन्न तथा प्रफुल्ल था ! प्रसन्न-भाव से, उन कठिनाइयों को आसान करने का यत्न करते रहे ! अपने-आप ही कठिनाइयां पैदा की थीं और अब अपने-आप ही उन्हें आसान करना था ! अपने हाथ पैर हिलाए बिना, कठिनाइयां आसान भी तो नहीं हो सकतीं कभी ! शायर भी तो यही कह रहा है :—

"हो नहीं सकतीं कभी आसान उसकी मुश्किलें !
खुद जो अपनी मुश्किलें आसान करता ही नहीं !!"

अब, उस बीहड़ जंगल में, हम भी बिछुड़ गए आपस में ! दो किधर, तीन किधर, कोई इधर, कोई उधर ! मंज़िल की उन कठिनाइयों से

जूझते हुए, आखिर 'अपर-मुंडा' के डाक-बंगले में पहुँच ही गए, कोई थोड़ा आगे, कोई थोड़ा पीछे ! बा० बलवन्तराय जी का प्रेमी-परिवार, पहले ही पहुँच गया था यहाँ पर, सेवा-भक्ति करने के लिए, काज़ीकुंड से !

हमारे यात्री-दल के भूलने-भटकने की एक और मजेदार कहानी है, यहाँ की ! दोपहर बाद, बा० बलवन्तराय जी बोले : ऊपर पहाड़ पर, एक सुन्दर एवं दर्शनीय जल-स्रोत है ! चलें, देख आएँ !

मैंने कहा : अपना तो मन नहीं है जाने का ! बहुतेरे चश्मे देख आए हैं कश्मीर में, बड़े-बड़े ! अब यहाँ क्या देखेंगे ? आप ही देख आइए !

किन्तु, बलवन्तराय जी का आग्रह-पर-आग्रह चलता ही रहा ! और, हमें बिना मन के भी, तैयार होना पड़ा ! बंगले के पास ही, एक छल-छल करता नाला बह रहा था ! उस से आगे एक पगडंडी से चढ़ चले, ऊपर की ओर ! थोड़ा आगे बढ़े तो, पगडंडी ही गायब ! यूँही, इधर-तिधर भटकते रहे ! चश्मे की तलाश में खोये-खोये से फिरते रहे ! चश्मे का नामो-निशान ही न था, वहाँ पर कहीं ! सघन जंगल में, इधर-उधर या ऊपर, कुछ नजर ही न पड़ रहा था ! थक कर एक जगह बैठ गए ! सागर और बा० तिलकराज, चश्मे की खोज-बीन करने के लिए, ऊपर चढ़ गए ! हैरान-परेशान हो कर, वे भी वापस लौट आए ! चश्मे का कहीं खोज ही न मिला ! दिल के अरमान दिल में ही लेकर, उलटे पैरों बंगले में आकर ही दम लिया ! भुलाने-भटकाने वाले साथी खूब मिले थे, आज हमें ! सुबह भी भटके, शाम भी भटके ! पर, मज़ा यह रहा कि, अटके कहीं नहीं बीच में ! तन-मन पर मस्ती की बहार छाई रही !

बैठे थे ! प्रकृति की गोद में ठहरने का, ऐसा आनन्द कहीं भी न आया, कश्मीर की इस यात्रा के क्षणों में ! हरे-भरे गिरि-शिखर प अकेला डॉक-बंगला ! पास में ही कल-कल नाद करता हुआ, बह रा था, शीतल पानी का नाला ! इधर-उधर और पीछे—तीन ओर, हरे भरे वृक्षों और द्रुम-लताओं से लहलहाते गगन-चुम्बी गिरि-शिखर सामने, नीचे की ओर 'लोअर-मुंडा' की हरी - भरी पहाड़ियां, उन नीचे कश्मीर की घाटी के मैदान में वृक्षों के झुरमुठ, पानी से भरे धा के खेत और दूर— बहुत दूर, ऊँचे-ऊँचे, चांदी की चादरें ओढ़े, मीलों त फैले हुए शैल-शिखर ! एक-से-एक सुन्दर दृश्य तन-मन नयन को पुलकि कर रहे थे !

वास्तव में अपर-मुंडा की सौन्दर्य सुषमा अलौकिक, अद्भुत ए चमत्कारपूर्ण है ! प्राकृतिक सौन्दर्य-प्रेमियों के लिए, अच्छा आकर्षण का केन्द्र है यह ! वर्षा की बहार से यहाँ की शोभा और भी अनोखी तथा अवर्णनीय हो गई थी ! प्रकृति-नटी क्षण-क्षण में अपना रूप-रंग बदल रही थी ! कभी धूप, कभी मेघ-माला की दौड़-धूप, कभी काली-काली घटाओं का उमड़-घुमड़ कर पर्वत-शिखरों पर छा जाना, कभी बादलों की गड़गड़ाहट और बिजली की भयंकर कड़कड़ाहट ! कभी मूसलाधार बारिश की बहार ! कभी पर्वत-शिखरों पर सफेद-दूधिया बादल बन रहे हैं, इधर-उधर पहाड़ों पर छा रहे हैं ! और, देखते देखते ही, गिरि-शिखर, हरे-भरे जंगल, हिमाच्छादित पहाड़ों की चोटियां, पानी से भरे धान के खेत, डाक-बंगले से नीचे, नागिन की तरह इठलाती-बलखाती सड़क—सब नजरों से गायब ! डाक-बंगला और हम ! इसके अतिरिक्त, चारों तरफ अंधेरा-ही-अंधेरा ! कैसी विचित्र थी वह सफेद-दूधिया बादलों की दुनिया ! प्रकृति-नटी की उस नयनाभिराम

श्रौर तूफानों का। श्रौर, यही तो दरश्रसल जिन्दगी है। कवि भी तो इसी स्वर में वोल रहा है :—

"है हंसी ही जिन्दगी, यह जिन्दगी कम हो न जाए !
मुश्किलें हैं तो हुश्रा क्या, मुस्कराता चल सफर मे !
गुनगुनाता चल सफर मे !!"

मगरकोट से ११ जून की शाम को चल कर, डिगडोल के रेस्ट-हाऊस में रैन-बसेरा किया और १२ जून के साढ़े नौ बजे, रामबन के डाक-बंगले में पहुँच गए! दोपहर बाद, कथा का प्रोग्राम चला! महिलाओं की खूब भीड जुडी, सत्संग का रस-पान करने के लिए! सन्त यहां पर महीना-दो-महीना, अच्छी तरह ठहर सकता है, अगर कथा सत्संग का रंग लगाने वाला हो तो!

"मेरी जिन्दगी एक मुसलसल सफ़र है !
जो मंज़िल पै पहुंचा तो मंज़िल बढ़ा दी !!"

साथी कितने आगे बढ गए और कहाँ पहुँच कर रुकेंगे—कुछ पता ही न लग रहा था ! गर्मी से कुछ परेशानी हुई तो, एक पहाड़ी पर, वृक्ष की छाया में बैठ गया, जरा विश्राम करने के लिए ! आहार मेरे साथ में; पर फिर भी, भूखा-का-भूखा ! साथी के बिना वह भोजन भी, हाथ का अलकार-भार ही वन रहा था ! क्या खूब फाक़ेमस्ती थी, वह भी ! मन मस्त हो कर गा रहा था :—

"ढलता मै, अलमस्त हुआ दिल, पस्त हुई फ़िकरो की वस्ती !
अजव हमारी वन्धु गरीबी, अजब हमारी फाक़ेमस्ती !!"

थोडा दम लिया ! उठा ! चला ! बढा ! आगे पुल पर साथी बैठे थे, मेरी इन्तज़ार में ! देखते ही मैंने कहा : आज तो खूब छकाया मुझे ! चलते ही चले आए ! रुकने का नाम ही न लिया ?

वे बोले जगह ही न मिली, कहीं बैठने के लिए ! क्या करें, मजबूर थे, हम भी !

अब, वहाँ से उठ कर चले ! आहार-पानी करने के लिए, एक पहाड़ी पर चढ़ गए, एकान्त वृक्ष की छाया देखकर ! छाया में बैठ ही थे कि, ऊपर के पर्वत-शिखर से उतर कर, एक युवक आ गया ! बोला : हमारे यहां से भोजन और दूध की कृपा कीजिए ! मेरी माता ने मुझे भेजा है !

मैंने पूछा आप कहाँ से हैं ? और, हमारे यहाँ आने की आप को कैसे सूचना मिल गई ?

युवक बोला : हम जम्मू के रहने वाले खत्री हैं ! आज-कल यहाँ आए हुए हैं, गर्मी के कारण ! ऊपर हमारी कोठी है ! आप जब ऊपर चढ़ रहे थे और वृक्ष की छाया में बैठ रहे थे तो, ऊपर से मेरी माता देख रही थी ! उसी ने मुझे भेजा है, बुलाने के लिए !

मैंने पूछा : क्या अलग-एकान्त, ऐसा कमरा भी खाली है कोई, आप की कोठी में; जहाँ हम थोड़ी देर ठहर सकें ?

युवक बोला : हाँ, क्यों नहीं ! आप चलिए ! सब चीजें मिल जाएँगी !

हम चल पड़े, अपना सामान उठा कर ! ऊपर चढ़े और कोठी के एकान्त कमरे में पहुँच गए ! बुढ़िया माता का रोम-रोम खिल गया, हमें देख कर ! आहार-पानी किया ! थके-हारे थे ! दो घंटे वहाँ आराम किया ! पर, मंजिल अभी दूर थी ! यात्री को आराम कहाँ ? मैंने युवक से कहा : हमें पत्नी-टॉप पहुँचना है आज ! यहाँ से सीधी पगडंडी बतला दीजिए हम को !

युवक बोला : जितनी देर में आप पत्नी-टॉप पहुँचेंगे, इतनी देर में तो, आप कुद पहुँच जाएँगे ! मंजिल भी तय हो जाएगी और आराम भी रहेगा ! सीधी पगडंडी है पहाड़ी !

पगडंडी ! आओ, क़दम बढ़ाएँ, हिम्मत आज़माएँ और अन्तर में साहस के नए दीप जलाएँ —

"बढ़ो कि रंगे चमन बदल दें, चलो-चलो हिम्मत आजमाएँ !
जुनूँ को लौ और तेज कर दो, फ़सुर्दा शमश्रों को फिर जलाएँ !!"

आज, न मालूम क्या तूफान-सा आ रहा था, हमारी यात्रा के क्षणों में ! पीड़ा भी छोड़ा, बटौत भी छूट गया, पत्नी-टॉप से भी छुट्टी पाई ! और, हमारे क़दम उठ चले अब, कुद की चढाई की ओर ! पगडंडी का मार्ग मनोरम और आकर्षक था ! वन-श्री से युक्त हरी-भरी उपत्यकाओं की ओट से झाकते हुए, गिरि-शिखरों के ऊर्जस्व शीर्ष ! सुवासित लताओं तथा गुल्मो से आच्छादित और वन-पाखियो के मधुर गुंजन से गुंजित सुन्दर मार्ग ! यह सब मिल कर ऐसे सौन्दर्य की सृष्टि कर रहे थे कि, जिस का अवलोकन कर, ऐसा अनुभव हो रहा था कि, हम किसी दिव्य-लोक में पहुँच गए हैं !

इस का अर्थ यह नहीं कि, मार्ग भी सरल था ! प्रकृति-नटी के इन अनमोल रत्नो के दर्शन इतने सुलभ नहीं हैं ! ऊबड-खाबड पगडंडियो पर, कहीं-कहीं तो बहुत ही विकट चढ़ाई चढ़नी पडी आज ! कई स्थानो पर तो, हमारे धीरज एव साहस की कठिन अग्नि-परीक्षा हो रही थी ! कई स्थल तो, ऐसे खतरनाक आए, जहाँ पर पैर फिसला कि, सीधे नीचे अतल में ले जाने वाले खड्ड में ! परन्तु, हम थे कि, इस दुष्कर-से दुष्कर चढाई को पार करते जा रहे थे, मस्ती के साथ ! न मालूम, आज इतना साहस कहाँ से आ गया था कि, थकान अनुभव ही नहीं हो रही थी ! कवि की यह उक्ति प्राणों में नया स्पन्दन उत्पन्न कर रही थी :—

"धूलिसात् कर दे शैलों को, मैं वह शक्ति अपार लिए हूँ!
मुर्दों मे भी जान डाल दे, वह जीवन-झनकार लिए हूँ !!"

इतना अवश्य कहूँगा कि, कुद की चढ़ाई की यह यात्रा अत्यन्त कठिन है! पर, साथ ही मैं यह कहना भी न भूलूँगा कि, चढ़ाई की इन कठिनाइयो से, मार्ग की इन जटिलताओ से, रास्ते की इन विकट घाटियों से, हम ज़रा भी झिझके नहीं, ठिठके नहीं, रुके नहीं, गडबडाए नहीं, लडखडाए नहीं, घबराए नहीं! कठिनाइयो से घबराना या भय खाना, हमारी प्रकृति ने सीखा ही नहीं है दरअसल!

"मौस्सर हादसे अर्ज़ो-समा के मुझ पै क्या होते!
मेरी फ़ितरत ने सीखा ही नहीं, मुश्किल से डर जाना !!"

पगडडी के रास्ते में, छोटे-बडे शिला-खण्डों पर क़दम रखते, पहाडों पर अपना रास्ता स्वय बनाते, चलते, आख़िर पहुँच ही गए ऊपर, पत्नी-टॉप से सनासर जाने वाले हरे-भरे राज-मार्ग पर! सड़क पर पहुंचते ही, ऐसी ठडी-शीतल हवा लगी कि, पसीने भी ग़ायब और थकान भी तिरोहित! मन ने धन्यता का अनुभव किया, उस सरस-प्रकृति की गोद में पहुँच कर! दूर-दूर तक देवदार और चीड के हरे-भरे वृक्ष, अपना सिर ऊंचा किए, हमारा स्वागत कर रहे थे! इधर-उधर, हरी-भरी उपत्यकाएँ और अधित्यकाएँ अत्यन्त मनोरम प्रतीत हो रही थीं! अब हम ऊंचे और रमणीय गिरि-शिखरों पर बैठे थे! वह सारा सौन्दर्य इतना विराट् था कि, मन एकाएक उसे झेल नहीं सका!

और, क्षण-भर के लिए अभिभूत हो गया ! कुछ देर, हम बैठे बैठे, प्रकृति के उस अद्भुत एवं आकर्षक वैभव की झाँकी लेते रहे !

दिन जल्दी-जल्दी ढल रहा था ! सूरज तेजी से ढल रहा था ! उस नयनाभिराम प्रकृति के वैभव के बीच, कब तक बैठे रहते ? अब आगे उतार-ही-उतार था ! उतार भी अत्यन्त विकट और बड़ा ही खतरनाक ! न चाहते हुए भी उठे ! चले ! उतरते हुए ऐसा लग रहा था, मानो हम स्वर्ग के दिव्य वैभव को छोड़ कर, नीचे मर्त्यलोक में उतर रहे हैं ! स्वर्ग के देवताओं को भी तो, आखिर स्वर्ग छोड़ कर, नीचे भूतल पर आना ही पड़ता है ! एक ही पत्थर की विशाल चट्टान पर से उतर रहे थे, हम नीचे की ओर ! उस एक विशालकाय चट्टान पर ही, छोटी-छोटी पैड़ियों के निशान बने हुए थे ! ढलाव इतना विकट एव भयकर था कि, कहीं बैठ-बैठ कर, कहीं हाथ टेक-टेक कर, उतर रहे थे ! जरा खड़े हुए, आगे को झुके तो, लगा कि अब गिरे, अब गिरे ! और सागर बाबू तो एक जगह लुढ़क ही गए थे ! अगर आगे बैठ कर उतरते हुए, श्री उमेश मुनि जी का सहारा न मिलता तो, वह लुढ़कते-लुढकते, न मालूम कहां जा कर टिकते ? फिर भी, कला-बाज़ी का मजा तो आ ही गया ! चढ़ाई की अपेक्षा भी, उतराई आज अत्यन्त भयकर थी ! तन-मन में साहस की बिजली भर कर, कदम-क़दम पर सावधानी एवं सतर्कता रखते हुए, गहरे नालों और खड्डों को पार करते हुए, कांटों और पत्थरों के ज़ख्म खाते हुए, आखिर आ

ही पहुँचे, कुद के डाक-बगले के पास, सड़क पर ! अब सामने कुद नज़र आ रहा था ! लम्बे-लम्बे डग भर कर, पौन घण्टा दिन रहते-रहते, हम उसी जाने-पहचाने गुरुद्वारे में पहुँच गए ! रामबन से कुद तक, ३० मील की लंबी और विकट यात्रा करके भी, आज हमारे तन-मन-नयन प्रसन्नता से खिल रहे थे !

कुद से चिनैनी और सिरमौली होते हुए, १५ जून को साढ़े-दस बजे, हम ऊधमपुर पहुँच गए, उसी पूर्व-परिचित धर्मशाला के कमरे में, तीसरी मंजिल पर !

ऐसा अवसर, ऊधमपुर वालों को कब - कब मिलता है ?

मैंने कहा : यदि ऐसी बात है तो, आप के इस शुभ-संकल्प का हृदय से स्वागत है ! जनता के धर्म-लाभ के साथ, हमारा लाभ भी तो जुड़ा हुआ है ! आप की सद्भावना को साकार करने के लिए, कल हम ज़रूर कथा सुनाएंगे, यहीं सत्संग का रंग जमाएंगे, और सुबह नहीं तो, शाम को अपनी मंज़िल पर क़दम बढाएंगे ! आप की खुशी में, हमें भी तो खुशी है ! अपना तो तराना ही यह है :—

"दिल मे अरमाँ हैं मेरे, कि मेरा दिल शाद रहे !
सब का दिल शाद करूँ, जिससे मेरी याद रहे !!"

और, अगले दिन, कथा-सत्सग का अच्छा रग जमा ! हम भी प्रसन्न तथा सत्सग-प्रेमी भी प्रसन्न !

कश्मीर की ठडी दुनिया में तो, हम बारह-एक बजे भी, यात्रा-पथ का आनन्द लिया करते थे ! पर, अब वह ठडी मजिल की ठंडी बहार कहाँ ? अब तो हम गर्मी से तपती-जलती दुनिया में आ पहुँचे थे ! इसलिए, शाम के सवा पाँच बजे, चलने के लिए तैयार हुए हम ! किन्तु, सागर बाबू इतना स्फूर्ति-शील एव चेतना शील कहाँ, जो समय पर तैयार हो जाए ! वह तो हजरत अभी अपनी अल्हड-मस्ती में, नल के नीचे बैठा, तन - मन की गर्मी शान्त कर रहा था ! बा० तिलकचन्द ने आवाज-पर-आवाज दी तो, बडी मुश्किल से आया, झूमता हुआ ! अभी तो हजरत के कपड़े, बिस्तर तथा इतर सामान—सब बिखरे पड़े थे ! समेटा सामान ! बांधा बिस्तरा ! उठाए कपड़े ! और, इस साज-सज्जा में ही बज गए छह ! समय काफी खिच गया था ! बढ़ाए कदम, जल्दी से ! पहुँचे सडक पर ! दिल का जोश क़दमो को

और, रात में, न कोई आया; न गया ! आदमी यूँही अपने मन में भय का भूत खडा कर लेता है ! रात बडे मजे में बीती ! सुबह सूरज की प्रथम किरण के साथ ही, चल दिए हम, वहाँ से ! आकाश में बादल छा रहे थे ! थोड़ा आगे बढे तो, बादलो ने अपना रंग दिखलाया ! और, देखते-देखते बारिश की रिमझिम शुरु हो गई ! सामने ही सडक के दोनो ओर, कुछ दूकानें और एक छोटी-सी बस्ती थी ! एक दूकान के छप्पर में खडे रहे, आध-पौन घटे तक ! बारिश बद हुई, और हम आगे के लिए चल दिए ! भीगे-भीगे सुहावने वातावरण में, यात्रा का पता ही न चला ! टिकरी पहुँचे तो, स्कूल लगा हुआ था ! और स्थान था नहीं कोई, ठहरने के लिए ! बस्ती से आधा फर्लांग वापस लौट कर, एक शिव-मन्दिर में डेरे लगा दिए! बस्ती से आहार-पानी ले आए ! जगल में खूब आनन्द-मंगल रहा उस दिन !

सूर्योदय होते ही, चल पडे आगे के लिए ! सडक से चक्कर लगता था, इसलिए पहाड़ी पगडडी पकड़ ली ! कुछ दूर पहुँच कर, पगडडी ही लुप्त हो गई ! नालों में भटकते रहे, काटो से उलझते रहे, खड्डो में ऊपर-नीचे चढते-उतरते रहे ! पर, रुके नहीं, चलते रहे ! कुछ देर भटकने के बाद, दूसरी तरफ से आने वाली पगडडी हाथ लग गई ! पगडडी से, ऊपर पहाड़ की चोटी पर चढे, फिर विकट उतराई पार करके, सड़क मिल गई, घूमती-फिरती ! सडक पर कदम बढ़ाते हुए, जा पहुँचे, झज्झर-कोटली के डॉक-बंगले में, तवी नदी के तट पर ! पर, अब वह हवा कहाँ थी वहाँ ? न वह हरियाली, न तवी का वह पानी ! न श्री पडित हृदयनाथ और न पडित श्यामलाल ! पडित हृदयनाथ का वटौत तबादला हो गया था ! और, पडित श्यामलाल, अपने काम से कहीं बाहर गया हुआ था ! दिन भी गुजरा, रात भी बितायी !

उठाए चल रहा था ! एक शेर बार-बार गुनगुना रहा था —

"लक्ष्य तक पहुँचा दिया बेताबिए दिल ने मेरे !
इक तड़प में मंज़िलों का फ़ासला जाता रहा !!"

और, इस तरह निरन्तर विहार करते रहते हुए, आ पहुँचे हम, गढ़ी के बाहर, धान और चीनार के अपने उसी परिचित झुरमुट में, सड़क के किनारे ! सेवक पृथ्वीसिंह ने — जो साथियों का सामान लेकर, आगे पहुँच गया था — अगवानी करते हुए कहा : आज यहाँ नहीं ठहरना चाहिए ! इस नाले में बड़ा भयंकर साँप है ! एक सिपाही-सवार को दिखलाने के लिए, मैंने उस साँप को ढेला मारा तो, वह तो एकदम सीधा खड़ा हो गया ! मैं झट से सड़क पर दौड़ आया ! आज यहाँ पर खतरा है ! बस्ती में चलिए !

मैंने कहा : भोले पंछी ! अपनी राह जाते हुए, उस बेचारे नाग-देवता को, क्यों छेड़ दिया तूने ? तुम्हें पहले ही होश रखना था ! सीधा जाने देते उसे, अपने रास्ते पर ! जब तुम्हें मालूम था कि, आज यहाँ पर रैन बसेरा करना है तो ऐसी हरकत बिल्कुल भी नहीं करनी चाहिए थी तुम्हें ! आगे-पीछे तो सोचते थोड़ा-बहुत ! और, अब ठहरना तो यहीं पर है ! बस्ती-बस्ती में कहाँ जाना है अब ? 'तरुतल-वास' का आनन्द कैसे छोड़ा जा सकता है ? नाग आए, चाहे नागराज का बाप आए ! आसन तो यहीं जमेंगे, अपने अब ! जो होगा, अच्छा ही होगा ! अगर तुम लोगों को भय या डर लगता है तो, लीजिए, हम दोनों मुनि, इधर नाले की तरफ, मोर्चे पर डट जाते हैं ! तुम लोग उधर लगा लो, अपने बिस्तरे ! जो बला आएगी, हम झेल लेंगे सब, अपने ऊपर ! तुम निश्चिन्त रहो ! घबराओ नहीं ! होने दो जंगल में ही मंगल !

और, रात में, न कोई आया; न गया ! आदमी यूँही अपने मन में भय का भूत खडा कर लेता है ! रात बड़े मजे में बीती ! सुबह सूरज की प्रथम किरण के साथ ही, चल दिए हम, वहाँ से ! आकाश मे बादल छा रहे थे ! थोड़ा आगे बढे तो, बादलो ने अपना रंग दिखलाया ! और, देखते-देखते बारिश की रिमझिम शुरू हो गई ! सामने ही सडक के दोनो ओर, कुछ दूकानें और एक छोटी-सी बस्ती थी ! एक दूकान के छप्पर में खडे रहे, आध-पौन घटे तक ! बारिश बद हुई, और हम आगे के लिए चल दिए ! भीगे-भीगे सुहावने वातावरण में, यात्रा का पता ही न चला ! टिकरी पहुँचे तो, स्कूल लगा हुआ था ! और स्थान था नहीं कोई, ठहरने के लिए ! बस्ती से आधा फर्लांग वापस लौट कर, एक शिव-मन्दिर में डेरे लगा दिए! बस्ती से आहार-पानी ले आए ! जगल में खूब आनन्द-मंगल रहा उस दिन !

सूर्योदय होते ही, चल पडे आगे के लिए ! सडक से चक्कर लगता था, इसलिए पहाड़ी पगडडी पकड़ ली ! कुछ दूर पहुँच कर, पगडडी ही लुप्त हो गई ! नालो में भटकते रहे, काटो से उलझते रहे, खड्डों में ऊपर-नीचे चढते-उतरते रहे ! पर, रुके नहीं, चलते रहे ! कुछ देर भटकने के बाद, दूसरी तरफ से आने वाली पगडडी हाथ लग गई ! पगडडी से, ऊपर पहाड की चोटी पर चढे, फिर विकट उतराई पार करके, सडक मिल गई, घूमती-फिरती ! सडक पर कदम बढाते हुए, जा पहुँचे, झज्झर-कोटली के डॉक-बंगले में, तवी नदी के तट पर ! पर, अब वह हवा कहाँ थी वहाँ ? न वह हरियाली, न तवी का वह पानी ! न श्री पडित हृदयनाथ और न पडित श्यामलाल ! पडित हृदयनाथ का बटोत तबादला हो गया था ! और, पडित श्यामलाल, अपने काम से कहीं बाहर गया हुआ था ! दिन भी गुजरा, रात भी बितायी !

और, रात में, न कोई आया; न गया ! आदमी यूँ ही अपने मन में भय का भूत खड़ा कर लेता है ! रात बड़े मज़े में बीती ! सुबह सूरज की प्रथम किरण के साथ ही, चल दिए हम, वहाँ से ! आकाश में बादल छा रहे थे ! थोड़ा आगे बढ़े तो, बादलों ने अपना रंग दिखलाया ! और, देखते-देखते बारिश की रिमझिम शुरू हो गई ! सामने ही सड़क के दोनों ओर, कुछ दूकानें और एक छोटी-सी बस्ती थी ! एक दूकान के छप्पर में खड़े रहे, आध-पौन घंटे तक ! बारिश बंद हुई, और हम आगे के लिए चल दिए ! भीगे-भीगे सुहावने वातावरण में, यात्रा का पता ही न चला ! टिकरी पहुँचे तो, स्कूल लगा हुआ था ! और स्थान था नहीं कोई, ठहरने के लिए ! बस्ती से आधा फर्लांग वापस लौट कर, एक शिव-मन्दिर में डेरे लगा दिए! बस्ती से आहार-पानी ले आए ! जंगल में खूब आनन्द-मंगल रहा उस दिन !

सूर्योदय होते ही, चल पड़े आगे के लिए ! सड़क से चक्कर लगता था, इसलिए पहाड़ी पगडंडी पकड़ ली ! कुछ दूर पहुँच कर, पगडंडी ही लुप्त हो गई ! नालों में भटकते रहे, काँटों से उलझते रहे, खड्डों में ऊपर-नीचे चढ़ते-उतरते रहे ! पर, रुके नहीं, चलते रहे ! कुछ देर भटकने के बाद, दूसरी तरफ से आने वाली पगडंडी हाथ लग गई ! पगडंडी से, ऊपर पहाड़ की चोटी पर चढ़े, फिर विकट उतराई पार करके, सड़क मिल गई, घूमती-फिरती ! सड़क पर क़दम बढ़ाते हुए, जा पहुँचे, झज्झर-कोटली के डॉक-बंगले में, तवी नदी के तट पर ! पर, अब वह हवा कहाँ थी वहाँ ? न वह हरियाली, न तवी का वह पानी ! न श्री पंडित हृदयनाथ और न पंडित श्यामलाल ! पंडित हृदयनाथ का बटौत तबादला हो गया था ! और, पंडित श्यामलाल, अपने काम से कहीं बाहर गया हुआ था ! दिन भी गुज़रा, रात भी बितायी !

पर चढ़े तो, हमें देखते ही, जम्मू के लाला टेकचन्द जी और वा० शादीलाल जी, बस से उतर पड़े ! वे दोनो भी, अब हमारे साथ पैदल ही चल पडे ! थोडा आगे बढ कर, फिर सडक छोड दी और एक पहाडी पगडडी से हो लिए ! पगडडी से चलने में, हमें कुछ मजा आता था दरअसल ! थोड़ी दूर तक तो पगडडी ने साथ दिया ! आगे चल कर, उस ने भी जवाब दे दिया ! सामने गहरा भयावना नाला आ जाने से, एकाएक रास्ता ही बद हो गया ! चल दिए, यूँही नाले के सहारे-सहारे ! कभी नाले में नीचे उतरें, कभी ऊपर पहाड पर चढें ! कहीं भयावने खड्ड, कहीं ऊँची-ऊँची पथरीली चट्टानें ! कसरत करने का खूब मौका मिला ! एकाध साथी कुछ चिल्लपो मचाने लगा तो, मैंने कहा : अभी से घबरा गए ? मुसाफिर ही तो ठहरे ! जिधर चल पडे, चल पडे ! जिधर बढ चले, बढ चले ! पैदल-यात्रा में यही तो मौज है,यही तो मस्ती है! अब ये कदम पीछे थोडा ही हट सकते हैं? जरा हिम्मत-बुलन्दी से काम लो! अब तो वह मजिलें आप का इन्तजार कर रही हैं, जहाँ पहुँच कर फूल खिलते हुए मिलेंगे और नयी ताजगी की महकती हुई बहार देखने को मिलेगी :—

"शिकस्ता दिल हो न मेरे माली !
वोह दिन भी नजदीक आ रहा है !
कि फूल खिलते हुए मिलेंगे,
फ़िजा महकती हुई मिलेगी !!
कदम बढ़ाओ खिजांनसीबो !
वोह मंजिलें मुन्तजिर हैं अपनी !
जहाँ पहुँच कर निगाहे दिल को,
बहार की ताजगी मिलेगी !!"

लेखक की अन्य रचनाएं

★ सन्मति - महावीर

★ भागो नही, बदलो

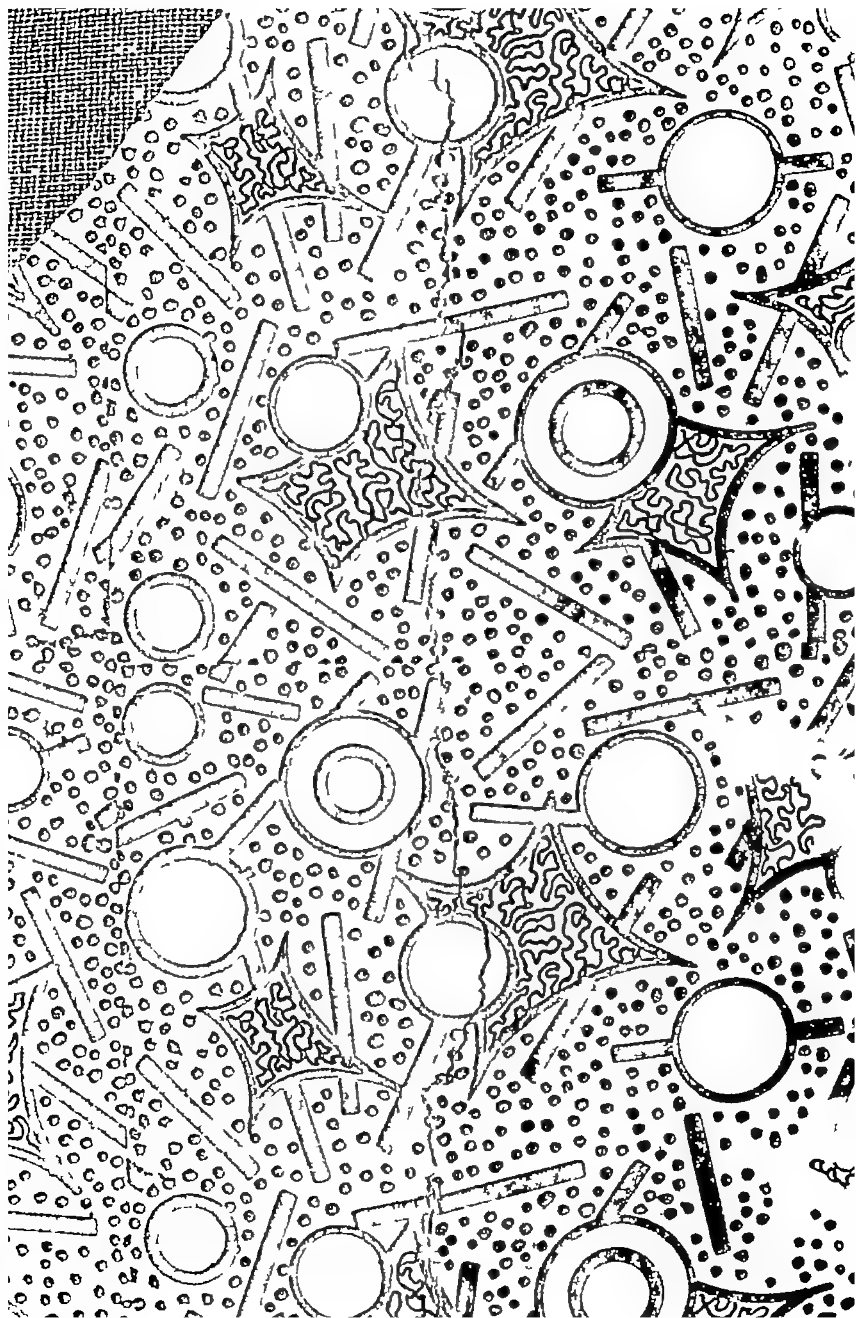
★ सन्मति - सन्देश

★ सगीत - माधुरी

★ मजिल अभी दूर है

★ एक महान् चुनौती





"संत हृदय नवनीत समाना !
कहा कविन्ह पै कहइ न जाना !!
निज परिताप द्रवहि नवनीता !
पर दुख द्रवहि सो संत पुनीता !!"

"भारत का संत तो प्रत्येक आत्मा में परमात्मा की ज्योति के दर्शन करता है ! प्रत्येक आत्मा का स्वागत-सत्कार करता है, अपनी आत्मा के समान समझ कर ! उसके रोम-रोम से तो यही ध्वनि निकलती है :—

"हर जान मेरी जान है, हर एक दिल है दिल मेरा
हाँ, बुलबुलो गुल महरो माह की आँख मे है तिल मेरा !!"

"भारतीय संस्कृति के वातावरण में पला हुआ संत तो, दूसरों को आकुल-व्याकुल देखकर रो उठता है ! दूसरों को बेचैन बनाने और कष्ट देने की बात तो उस की वाणी पर क्या, मन में भी नहीं आ सकती ! उस का अन्त स्वर तो यही होता है —

"किसी की आँख तर देखूँ तो, अश्क आँखों से जारी हो !
किसी की बेक़रारी से मुझे भी बेक़रारी हो !!"
किसी की जान से बढ़ कर न अपनी जान प्यारी हो !
मेरी जिन्दगी का मरकज़ और मक़सद इनकसारी हो !!"

"पर, यह कैसा संत कि दूसरों को फूटी आँख से देख भी नहीं सकता ! इन युवकों का यहाँ ठहरना भी इसे सहन नहीं हो सका !

यह संत है या रोटी का मजदूर ?"

और, मैंने उन दो भिक्षु-विद्यार्थियों से कहा : अरे, यह कैसा है तुम्हारा संत-महन्त ! जरा बुलाओ तो सही ! दो बातें करेंगे हम उस से ! पर, उन की हिम्मत कहां, जो सामने आए ! अन्दर से निकला ही नहीं दो घंटे तक ! आखिर, उस संत ने युवकों को वहां से निकलवा कर ही दम लिया ! रोटी का मजदूर जो ठहरा ? युवक अपना बिस्तर-बोरिया समेट कर ऊपर की बस्ती में चले गए ! मन अन्दर-ही-अन्दर बोल उठा —

"हम न थे आगाह वाइज ! जुस्तजूई से तेरी !
आदमी तुम को समझ कर, पास आ बैठे थे हम !!"

इन्सान के दिमाग़ में जब किसी भी तरह का नशा होता है तो, वह मनचाही और मनमानी करने में कसर नहीं छोड़ता ! उचित-अनुचित का विवेक वह खो बैठता है ! पर, मनुष्य का लक्षण जागृति है, सुषुप्ति और नशा नहीं ! नशे में तो मनुष्य नादानी कर बैठता है ! जागृत व्यक्ति तो प्रति-क्षण जीवन में सतर्क रहता है ! इसीलिए, कवि ने चुनौती-पूर्ण स्वर में मनुष्य की आत्मा को झकझोरते हुए कहा है :—

"हमेशा जांचते रहना, कहीं नाहक़ न हो जाए !
दिले दाना हविस के रंग में अहमक न हो जाए !!"

अस्तु, बटोत वैसे है एक रमणीय स्थान ! चहल-पहल खूब है । मन भी अच्छा लग जाता है यहां पर आने-जाने और सैर-सपाटा करने वालों का ! देवदार तथा चीड़ के तो सघन वन हैं यहां पर इधर-उधर ! यहां-वहां दूर—बहुत दूर बर्फीली चोटियां भी बड़ी ही भव्य नजर आती हैं यहां

से ! ऊधमपुर के महाजनों के तीस-पंतीस घर हैं यहाँ पर ! बड़े ही सेवा-भावी और सत्संग-प्रेमी हैं ! तीन-चार दिन तक कथा में अच्छा रंग रहा ! महिलाओं का तो ठाठ लग जाता था सत्संग में ! संत यहाँ मास-कल्प भी कर सकता है आसानी के साथ, पर, हो जरा कथा-वार्ता सुनाने वाला और जनता को सत्संग का अमृत-रस पिलाने वाला !

नीचे एक गहरा नाला था, जो हरे-भरे दरख्तों से लहलहा रहा था। प्रकृति-नटी के रूप-रंग को देखते चल रहे थे मन्थर गति से। सामने से एक बडी चमकदार कार आ रही थी तेज रफ्तार से। हमारे पास आते ही, वह एक दम ठहर गई! "कौन साहब आ गए हैं?" —मन यह सोच ही रहा था कि, जम्मू-कश्मीर असेंबली के स्पीकर श्री असदुल्ला मीर हाथ जोड़ते हुए नीचे उतरे। बोले क्या मुझे पहचाना आप ने ?

मैंने कहा : क्यो नहीं! महावीर-जयन्ती के उत्सव पर, जम्मू आप को देखा था। आप असदुल्ला मीर हैं न ?

मीर साहब : हां-हां, खूब पहचाना आप ने मुझे! अच्छा, आ कश्मीर तशरीफ ले जा रहे हैं आप ?

मैंने कहा : इस में क्या शक है! कश्मीर की ठंडी दुनिया में घूमने का संकल्प लेकर चल पडे हैं!

मीर साहब : तो क्या श्रीनगर तक आप पैदल ही जाएंगे ?

मैंने कहा : हां, सन्त लोग जो ठहरे! भारत का सन्त तो परिव्राजक कहलाता है—पैदल घूमने वाला!

"तो, कश्मीर में खूब घूमिए आप"! —मीर जी बोले!

मैंने कहा : देखो, विचार तो घूमने का ही लेकर चले हैं!

"अच्छा, आज मैं जम्मू जा रहा हू! कल वापस लौट जाऊंगा! वानिहाल में फिर मिलूंगा मैं! —मीर साहव ने विनम्र-स्वर में कहा!

मैंने पूछा : क्या वानिहाल की नीचे की टन्नल (सुरंग) से जाने

की इजाज़त मिल जाती है आने-जाने वालों को आजकल !

मीर साहब आजकल काम हो रहा है सुरंग में ! आना-जाना बंद है ! आप आइए, मैं इजाज़त दिला दूंगा ! अच्छा इजाज़त !

अब, मीर साहब अपनी कार में और हम अपनी राह पर ! चलते-चलते नौजवानों को मैंने उर्दू की यह शेर सुना डाली :—

"बशर को चाहिए मिलता रहे हर से ज़माने में !
किसी दिन काम यह साहब सलामत आ ही जाती है !!"

अपनी मौज-मस्ती में चलते रहे हम ! जब हम पीड़ा से थोड़ी ही दूर पर रह गए तो, सड़क पर एक पहाड़ी यात्री भी हमारे साथ-साथ हो लिया ! मैंने पूछा : क्यों भई, आप कहाँ जा रहे हैं ?

"राम-वन जा रहा हूं महात्मा जी ! उस ने उत्तर दिया !

"क्या नाम है आप का ?" —मेरा अगला प्रश्न था !

"कासूसिंह है मेरा नाम—वह तपाक से बोला !

"रामवन क्या काम है ? मैंने फिर पूछा !

उस का उत्तर था : कल पेशी है मेरी !

मैं आगे पूछ बैठा अच्छा भई, एक बात बताओ ! राजा हरिसिंह का राज्य अच्छा था या यह राज्य अच्छा है ?

दर्द-भरी आवाज़ में वह बोला बाबा ! हरिसिंह तो हरिसिंह ही था ! ये लोग उसकी क्या बराबरी करेंगे ! हरिसिंह के राज्य में तो हर तरह की मौज थी ! रोटी-कपडा सब को मिलता था ! किसी की इज़्ज़त पर कोई हाथ नहीं डाल सकता था ! आज तो रोटी भी नहीं मिलती अच्छी तरह ! खुले आम दूसरों की

जाती है ! मनमानी चलती है आज की सरकार में तो ! हरिसिंह के राज्य में जो इनसाफ था, वह आज कहाँ ? देखिए, मैं एक चौकीदार हूं ! छः महीने से तनख्वाह का एक पैसा नहीं मिला ! पेशी पर पेशी लग रही है ! होता कुछ भी नहीं ! .

उसके साथ बातें करते-करते, हम 'पीड़ा' ही पहुँच गए अपने पडाव पर ! ऊँचे पहाड पर स्थित "रेस्ट-हाऊस" का कमरा मिल गया ठहरने के लिए ! पर, उस तग घाटी को देख कर मन कुछ खिला नहीं ! न भव्य गिरि-शिखर, न हरी-भरी उपत्यका ! एक नितान्त सकीर्ण घाटी, मानो किसी तपस्विनी उपेक्षित नायिका का आवास हो ! दो-चार दूकानें और दो-चार मकान !

अगले दिन रुकना था नहीं ! सुबह कुछ देर हो गई चलने में ! सडक-सडक चलना था आज नौ मील ! एक ओर आकाश से बातें करने वाले गिरि-शिखर और दूसरी ओर नीचे खड्ड में पाषाण-खंडों के संग आँख - मिचौनी खेलती हुई वेगवती चिनाव नदी ! बड़ा तेज और भयकर प्रवाह था उस नदी का ! युवक बोल रहे थे आज तक इस दरिया के उद्गम का पता नहीं लग सका है ! बडी भयंकर और विकराल नदी है यह ! बरसात के दिनों में, इस में बाढ़ आ जाती है तो, बहुत बडा खतरा पैदा हो जाता है ! पिछले साल आधा रामबन बह गया था इस की बाढ़ में !

आज हम चल तो सडक से रहे थे, परन्तु सड़क बड़ी ही खराब और फटी-फटी थी ! गिट्टियों और रोड़ियों के कारण चला नहीं जा रहा था ! रामबन के नजदीक पहुँचते-पहुँचते तो सड़क बिलकुल गई-गुजरी हो चली थी ! बाढ़ में सब सड़क टूट-फूट गई थी ! दोबारा बनाया जा रहा था ! चिनाव के किनारे बहुत बडी, ऊंची, पथरीली दीवार

खींची जा रही थी; जिस से सडक को कोई खतरा न हो सके भविष्य में! आज नौ मील की यात्रा भी हमारे लिए भार बन गई थी! बड़ी मुश्किल से लगभग बारह बजे, हम रामबन के डाक-बगले में पहुँचे!

ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों से घिरा हुआ रामबन, आधा चिनाव के इस किनारे पर तो, आधा उस किनारे पर बसा हुआ है! गर्मी यहाँ खूब पडती है! यहाँ आकर आगरे की गर्मी याद आ गई! दोपहर बाद, डाक-बगले में एक-दो सरकारी पदाधिकारी भी आ गए थे! उन के आने से बगले के वातावरण में एक उबाल-सा आ गया था! नौकर-चाकर उन की अर्दली में भागे-भागे फिर रहे थे सब! पूछने पर मालूम हुआ आज शाम को टी-पार्टी है इन की यहाँ पर!

शाम को बाहर से वापस लौट रहा था मैं! बगले के नजदीक आया तो, सब नौकर-चाकर दौड़-धूप कर रहे थे पदाधिकारियो की टी-पार्टी के लिए! आगे बढ़ा तो देखा: रसोई की दीवार की ओट में, एक नौकर मुर्गे की गर्दन साफ कर रहा था! रोम-रोम सिहर उठा उस हत्याकांड को देख कर! दुष्कृत्य का यह चक्र उन सफेदपोश पदाधिकारियों की रस-लीला के लिए ही चल रहा था! मन में विचारों का तूफान-सा उमड़ पडा—"ये कैसे इन्सान हैं! इन्सान की शक्ल में शैतान भी कितने घूमते हैं इस दुनिया में! शायर की यह बात ठीक ही है:—

'शक्लो सूरत से जाहिर है कि, हैं इन्सान के पुतले!
मगर ऐमाल कहते हैं कि, हैं शैतान के पुतले!!"

"कितना जालिम और खूँख्वार जानवर है यह इन्सान! दुनिया के तख्ते पर इस से बढ़ कर अत्याचारी और पापाचारी शायद ही कोई

दूसरा प्राणी मिले ! दूसरों की जिन्दगी को लूट कर, किस तरह अपने पेट में डाल लेता है यह ! कितना भयंकर क़ब्रिस्तान बन गया है आज इन्सान का पेट ! ऊपर से तो यह शरीर को खूब धोता-माजता है, कपड़े भी साफ-सुथरे पहनता है, बातें भी बड़ी-बड़ी बनाता है; पर पेट के अन्दर कितनी गंदगी डाल लेता है यह ! कवि ने सच ही कहा है :—

सफ़ाईयाँ हो रही हैं जितनी, दिल उतने ही हो रहे हैं मैले !
अंधेरा छा जाएगा जहाँ मे, अगर यही रोशनी रहेगी !!"

"नयी सभ्यता के सांचे में ढले ये इन्सान, जमाने की तरक्क़ी की कितनी डींगे हांका करते हैं ! क्या यही तरक्क़ी है आज के युग की ! खाने-पीने, चलने-बोलने की इस राक्षसी-लीला का नाम ही तरक्क़ी है तो, अधःपतन किसे कहेंगे फिर ? नयी सभ्यता की सफेद पोशाक के नीचे कितनी ग़फलत का अंधेरा चल रहा है ! आज के भूले-भटके इन्सान की इस नयी सभ्यता की झूठी चमक-दमक पर शायरों के ये कितने तीखे व्यंग्य हैं :—

"वक़ौल अहले मग़रिब, यह जमाना है तरक्क़ी का !
मुझे भी शक नहीं इस मे, कि ग़फ़लत की जवानी है !!"
"नई तहज़ीब में दिक्क़त जियादा तो नहीं होती !
मज़ाहिब रहते हैं क़ायम, फ़क़त ईमान जाता है !!"
"इल्मी तरक्कियों से ज़बां तो चमक गई !
लेकिन, अमल वही हैं फरेबो दग़ा के साथ !!"

उस दुष्कृत्य-लीला की तस्वीर आँखों और मन में रह-रह कर घूमती रही और रात में देर तक नींद भी न ले सका ! शायर की ये पंक्तियाँ बार-बार जबान पर आती रहीं —

'तुम्हारी तहज़ीब अपने खंजर से आप ही खुदकशी करेगी !
जो शाखे नाज़ुक पै आशियाना बनेगा नापायदार होगा !!"

उर्दू का शायर भी इसी लहर में गा रहा है :—

"भूखे गरीब दिल की खुदा से लगन न हो !
सच है कहा किसीने, कि भूखे भजन न हो !!"

साथी युवकों को भी भूख में कुछ सूझ नहीं रहा था ! चुप-चाप कमरे में पडे थे सुस्त-से ! मेरे से न रहा गया और पास जा कर बोल ही तो पडा : क्यों, क्या बात है जवानो ! भूख सता रही है क्या ? पड़े क्यों हो ? हाथ-पैर हिलाओ, मग्गरकोट जाओ, खाना-दाना लाओ और पेट की आग बुझाओ ! यों पड़े रहने से समस्या थोडे ही सुलझती है ? उन में कुछ हरकत आई ! दो युवक गाडी से 'मग्गरकोट' गए ! खाना-दाना लाए ! खाते-पीते ही चेहरों पर रौनक़ आ गई उन के !

अब, 'मग्गरकोट' छह मील रह गया था ! साढे तीन बजे हम रवाना हो गए वहाँ से ! सड़क से नीचे बहुत गहराई में, बानिहाल का खूनी नाला बह रहा था ! साल-भर में एकाध गाडी या ट्रक या आदमी इस में गिर ही जाते हैं अक्सर, इसलिए इसे खूनी नाला कहते हैं ! क्षण क्षण में आने वाले मोडों से भरा-भरा राज मार्ग ! जिस के एक ओर चट्टानें सिर ऊँचा किए खडी थीं और दूसरी ओर ग्रतल में ले जाने वाले गड्ढे थे ! ऊपर नजर जाए, तो भी डर लगे और नीचे को देखें, तो भी भय लगे ! सडक के मोडों को पार करते हुए, साढ़े छह बजे 'मग्गरकोट' पहुँच गए हम ! 'मग्गरकोट' एक छोटी-सी बस्ती है ! तीन तरफ ऊँचे-ऊँचे पहाड और सामने गहरा नाला ! पास से ही सड़क गुजरती है ! ऊधमपुर के महाजनों के दस-बारह घर हैं यहाँ पर ! अच्छे सत्संग-प्रेमी और भक्तिशील हैं ! पहले यहाँ पर मर्कट—बन्दर बहुत

उर्दू का शायर भी इसी लहर में गा रहा है :—

"भूखे ग़रीब दिल को ख़ुदा से लगन न हो !
सच है कहा किसीने, कि भूखे भजन न हो !!"

साथी युवकों को भी भूख में कुछ सूझ नहीं रहा था ! चुप-चाप कमरे में पडे थे सुस्त-से ! मेरे से न रहा गया और पास जा कर बोल ही तो पडा : क्यों, क्या बात है जवानो ! भूख सता रही है क्या ? पड़े क्यों हो ? हाथ-पैर हिलाओ, मग्गरकोट जाओ, खाना-दाना लाओ और पेट की आग बुझाओ ! यों पड़े रहने से समस्या थोडे ही सुलझती है ? उन में कुछ हरकत आई ! दो युवक गाड़ी से 'मग्गरकोट' गए ! खाना-दाना लाए ! खाते-पीते ही चेहरो पर रौनक़ आ गई उन के !

अब, 'मग्गरकोट' छह मील रह गया था ! साढ़े तीन बजे हम रवाना हो गए वहाँ से ! सड़क से नीचे बहुत गहराई में, बानिहाल का खूनी नाला वह रहा था ! साल-भर में एकाध गाडी या ट्रक या आदमी इस में गिर ही जाते हैं अक्सर, इसलिए इसे खूनी नाला कहते हैं ! क्षण क्षण में आने वाले मोडों से भरा-भरा राज मार्ग ! जिस के एक ओर चट्टानें सिर ऊँचा किए खडी थीं और दूसरी ओर अतल में ले जाने वाले खड्ड थे ! ऊपर नजर जाए, तो भी डर लगे और नीचे को देखें, तो भी भय लगे ! सड़क के मोडों को पार करते हुए, साढ़े छह वजे 'मग्गरकोट' पहुँच गए हम ! 'मग्गरकोट' एक छोटी-सी बस्ती है ! तीन तरफ़ ऊँचे-ऊँचे पहाड़ और सामने गहरा नाला ! पास से ही सड़क गुजरती है ! ऊधमपुर के महाजनो के दस-बारह घर हैं यहाँ पर ! अच्छे सत्संग-प्रेमी और भक्तिशील हैं ! पहले यहाँ पर मर्कट—बन्दर बहुत

रहते थे ! इसलिए, इस स्थान का नाम 'मर्कटकोट' था, जो विगडते-विगड़ते 'मगरकोट' हो गया !

कश्मीरी महिलाएँ बडी साहसी होती हैं ! शाम को घूमने-फिरने के लिए चला जा रहा था, मैं अकेला सडक के रास्ते ! दो कश्मीरी महिलाएँ ीर पर सामान रखे और दो-चार पशु साथ में लिए आगे - आगे जा ही थीं ! मैंने उन से आगे निकल जाने की कोशिश की तो, मेरी रफ देख कर वे पूछ वैठीं ओ साईं ! आप कहाँ से आया है ?

मैंने कहा : हम दिल्ली - आगरे से आया है ! पंजाब में घूम कर आ रहा है ! अब, हम कश्मीर जा रहा है !

"यह पैर में क्या हो गया है ?"

"पथरीले पंडे हैं न ! पत्थर लग गया है ! खाल छिलने से ज़ख्म हो गया है ! पट्टी वांध रखी है इसीलिए पैर पर !

"जूता नहीं पहनता आप ?

"नहीं हम जूता विल्कुल नहीं पहनता !

"तो गाडी में वैठ जाइए, पैदल क्यों चल रहे हैं आप ?

"नहीं, हम किसी सवारी में भी नहीं वैठता कभी ! सन्त और कीर तो पैदल ही चलता है !"

"ओ साईं ! आप तो वड़ा हिम्मती है ! हम से तो नंगे पैर वल्कुल भी नहीं चला जा सकता !

मैंने पूछा : आप कौन लोग हैं ?"

"हम कश्मीर के मुसलमान गुज्जर हैं !"

"इधर कहाँ से आ रहे हैं आप लोग ?"

"हम जम्मू से आ रहा है ! सर्दी के मौसम में हम अपनी भेड़-करियों और पशुओं को लेकर नीचे चला जाता है, और गर्मी में अव

"धीरे-धीरे चलने वाले ! दूर है तेरा नगर !
ऐसे कैसे खत्म होगा, यह तेरा लंबा सफ़र !!"

और, थोडी देर में ही हम ने अपने - आप को अपने पडाव के पास पाया !

गढी, एक छोटा - सा गांव, सडक से जरा हट कर—एक छोटे-से पहाडी टीले पर ! छोटे - से गाँव में ठहरने को भला स्थान कहाँ ? सडक के सहारे ही आम - पीपल के पेड, साफ - सुथरी जगह, ठडी छाया और उन्मुक्त हवा ! बस, जम गए अपने तो आसन वहीं पर ! साथी बोले : यहाँ जंगल में ही ?

मैंने कहा : फकीरो का कोई ठिकाना होता है कहीं ? उन की तो अपनी मौज होती है ! जिन्दगी की एक आनन्द - भरी मस्ती होती है ! जहाँ बैठ गए वहीं ठिकाना ! जहा आसन विछ गया, वही मुकाम —

"फ़कीरो से न पूछो तुम ठिकाना उन के रहने का !
जहाँ आसन विछा बैठे, वही समझो मकाँ अपना !!"

और, इस मस्ती - भरी जिन्दगी का मजा लूटने के लिए ही तो घर छोडा है ! आज वैसाखी के त्यौहार पर होने दो जगल में मंगल ! वजने दो सुख - चैन की वसी ! गूंजने दो हर हाल में मस्ती का तराना और, छेड़ने दो मुझे यह फकीराना फसाना :—

"हर आन हँसी, हर आन खुशी, हर वक़्त अमीरी है वावा
आलम मस्त फ़कीर हुए, फिर क्या दिलगीरी है वावा !!

उधर सह-यात्रियों का सामान सीधा ऊधमपुर पहुंच गया था ! क्योंकि, यहाँ पर उनके लिए किसी भी तरह की सहूलियत नहीं थी ! इसलिए, साथ चलने वालो को रवाना कर दिया ऊधमपुर को ! अब, उस जगल के पडाव पर थे हम दोनो मुनि, सेवाभावी पृथ्वीसिंह, मास्टर केवलकृष्ण और उनका सारा परिवार ! संक्रान्ति - पर्व का मगल-उत्सव आज जंगल में ही मनाया !

लगभग दोपहर के ग्यारह बजे होंगे ! बस्ती की ओर से एक व्यक्ति हमारे पास आया और हाथ जोड़ कर बोला : महात्मा जी ! हमारा बडा सौभाग्य है, जो आज बैसाखी के दिन आप के दर्शन मिले ! कृपा कीजिए, चलिए मेरे साथ भोजन के लिए !

मैंने पूछा : आप कौन हैं ? हमारे यहाँ आने का आप को कैसे पता लगा ?

वह अपनी विनम्र मुद्रा में बोला . महात्मा जी ! मैं इसी बस्ती में रहने वाला एक ब्राह्मण हू ! आप के सेवक पृथ्वीसिंह से बस्ती में आप के आने का समाचार मिला था ! आप ने बडी कृपा की, जो संक्रान्ति के दिन हम लोगों को दर्शन दिए ! बस्ती मे भोजन का समय हो गया है ! मेरे साथ चलिए भोजन के लिए !

बस्ती में आहार - पानी के लिए जाने का संकल्प तो चल ही रहा था ! दैवयोग से, बुलाने वाला भी मिल गया ! ऐसे मौके पर, और क्या चाहिए ? नयी मंजिल में नया दाना, नया पानी ! और, मेरे अन्तर में गूंजने लगी कवि की यह वाणी —

"करे खानाबदोशी की खुदा खुद कार सामानी !
नयी मंजिल, नया बिस्तर, नया दाना, नया पानी !!"

पानी के पात्र उठाए श्री उमेश मुनि जी ने और आहार के पा उठाए मैंने और चल दिए हम भोजन के लिए उस श्रद्धालु ब्रह्मण ं साथ ! साथ में चले मास्टर केवलकृष्ण भी और सेवक पृथ्वीसिं भी ! पक्के चट्टानी मार्ग से चढ़ते हुए बस्ती में पहुंच गए हम गली में दूसरे श्रद्धालु भक्तों ने भी प्रार्थना की कि—महात्मा जी हमारे यहाँ भी आइए ! परन्तु, सब से पहले वह ब्रह्मण सीधा अपने घ पर ही ले गया ! ब्रह्मण-दम्पती बडी ही श्रद्धा-भक्ति से आहार-पानी देने लगे तो, हलवा-पूडियाँ, मिष्टान्न देख कर मैं पूछ बैठा : बडा माल-मसाला तैयार कर रखा है आज ! ऐसी क्या बात है ?

वे बोले : महात्मा जी ! आज तो हमारा साल का त्यौहार है बैसाखी ! आज सक्रान्ति है न ?

बात समझ में आई और आहार - पानी ले कर चलने लगा तो, ब्राह्मण अपनी श्रद्धा - भरी भाषा में बोला : महात्मा जी ! जरा ठहरिए !

मैंने कहा : आप के यहाँ से आहार - पानी ले लिया है ! अब हमें दूसरे घरों में भी जाना है !

मैं अपनी बात कह ही रहा था कि ब्राह्मणी ने ब्राह्मण को अन्दर से कुछ निकाल कर दिया और ब्राह्मण अपने हाथ में कुछ नोट और रुपये लिए गद्‌गद-भाव से बोला : महात्मा जी ! यह भी लीजिए ! हम ग़रीबों की यह तुच्छ भेंट स्वीकार कीजिए !

मैंने मुस्कराते हुए कहा : पंडित जी ! यह भेंट - पूजा हमारे किस काम की ? आप के यहाँ से भोजन ले लिया है ! जैन - भिक्षु आवश्यकता होने पर भोजन और वस्त्र तो लेता है ! इस के अलावा,

वह कोई रुपया - पैसा स्वयं न लेता है और न अपने पास रखता है। रुपये - पैसे के मायावी संसार से वह बिल्कुल अलग - थलग रहता है। साधु - सन्तों का पैसे से क्या काम ? हमारे यहां तो यह कहावत चली आती है कि—गृहस्थ के पास कौड़ी नहीं तो, वह कौड़ी का नहीं, और, साधु के पास कौड़ी है तो, वह भी कौड़ी का नहीं। सन्त हो कर भी रुपये-पैसे से चिपा-चिपटा रहा तो, फिर सन्त ही क्या हुआ वह ?

मेरी बात सुन कर ब्राह्मण विनत - भाव से बोला : हमारी बस्ती में दूसरे सन्त - महात्मा आते हैं तो, वे तो भेंट - पूजा ले लेते हैं। आप ही एक ऐसे सन्त देखे हैं आज; जो रुपये - पैसे की भेंट स्वीकार नहीं करते ! धन्य है आप के जीवन को ! धन्य है आप के त्याग को ! आप-जैसे त्यागी - महात्माओं के सहारे पर ही तो यह पृथ्वी टिकी हुई है !

अब, भोजन के लिए दूसरे ब्राह्मण के घर पहुंचे तो, वहां भी यही हाल ! थाल में भोजन भी और दान-दक्षिणा भी ! मैंने उन्हें समझाते हुए कहा : रुपया-पैसा तो हम लेते नहीं ! जैन-भिक्षु तो रुपया-पैसा छूता तक भी नहीं ! इसलिए, यह पैसे की दुनिया तो हमें नहीं चाहिए ! थोड़ा भोजन अवश्य लेना है। इस के अतिरिक्त और कुछ तमन्ना नहीं है !

: ७ :

आँख जो-कुछ देखती है.... !

"आँख जो-कुछ देखती है, लब पै आ सकता नहीं !
महवे हैरत हूं यह दुनिया क्या से क्या हो जाएगी !!"

१४ अप्रैल का सुनहरी प्रभात ! "आज हम ऊधमपुर पहुंच जाएंगे"—अन्तर्मन में यह एक प्रसन्न तरंग ! केवल छः मील का आज हमारा सफर ! सूर्य ने अपनी प्रखर किरणें भूतल पर फेंकीं और हम चल पड़े ऊधमपुर की ओर राज-मार्ग पर अपने तेज क़दम बढ़ा कर !

लगभग, मील - डेढ मील चले होंगे कि, इतने में सह-यात्री युवक - वर्ग—जो कल ऊधमपुर पहुच गया था—आगे आ पहुंचा स्वागत - सत्कार करने के लिए ! सह-यात्री ही अगवानी कर रहे थे आज ऊधमपुर में हमारी ! उन युवको को देखते ही मैंने मुस्कराहट की मुद्रा में कहा : वाह, आप भी खूब रहे ! कभी यात्रा में साथ और कभी स्वागत के लिए आगे ! दो - दो पार्ट अदा करने पड़ रहे हैं आप को हमारी इस यात्रा के दौरान में ! खूब रग बदलते हैं आप भी !

इधर-उधर यों ही! चले थे कहां को और पहुंच गए हैं कहां?:—

"हम भूले हुए राह हैं ऐ साथी जवानो!
जाते थे कहीं और निकल आए कहीं और!!"

"पर, जवानो! तुम्हें अपनी जवानी की क़सम है, जो पीछे हटने—मुड़ने का नाम लिया तो! आज जवानी और चढ़ाई में मोर्चा है! देखें, जीत किस के हाथ है? मेरा मन बोल रहा है कि, हम जीतेंगे—जरूर जीतेंगे। आज इन पहाड़ों की चोटियों पर पैर रख कर चलेंगे हम! आज, इन गिरि-शृगों को भी झुका देंगे और इन पर अपनी विजय-पताका फहरा देंगे! ये नीचे रह जाएँगे और हम अपने-आपको इन के ऊपर पाएँगे!"

मेरी इस जोशीली वक्तृता से सब का उत्साह एक नयी अंगड़ाई ले उठा! थोड़ी देर हम बैठे वहां! शीतल-मन्द समीर के स्पर्श से नव-चैतन्य आ गया था प्राणों में! अपनी शक्ति और साहस बटोर कर उठ खडे हुए! चल पडे आगे! चढ़ चले चढ़ाई की ओर! पैर अच्छी तरह टिक सकें—ऐसी स्थिति आज कहां थी? वही चीड़ के वृक्षों की सूखी पत्तियों का फिसलना फर्श और पथरीली चट्टानें! कभी ऊपर को चढ़े, तो, कभी नीचे को उतरे! साथी युवक बोले: आज तो अच्छी जगह आकर फंसे चक्कर में! मैंने कहा: नौजवानो! अभी से घबरा गए! अरे! जवानी तो पहाड़ों से, नदी-नालों से टक्कर लेती है! जवानों की जबान पर तो यही नारा होता है:—

"दरिया हूं, कोहसार से टकरा के जाऊँगा!
रस्ते के हादसात पै मैं छा के जाऊँगा!!"

अभी तो कुछ भी कठिनाइयां नहीं आई हैं। जवानी तो तूफानों से टक्कर लेती हुई चलती है क़दम-क़दम पर ! ये तो मामूली-सी उलझनें हैं ! हमें तो इस से भी खतरनाक और पुर-पेच राहों से गुजरने में मजा आता है :—

'जहाँ ख़ुद खिज्रे मंजिल राहे मंजिल भूल जाता है !
मजे आता है, उन पुर - पेच राहों से गुजर जाना !!"

चढ़ते-चढ़ते जब हम काफी ऊँचाई पर पहुंच गए तो, नीचे—बहुत नीचे सड़क दिखाई दी और उस पर जाती हुई एक बस पर भी नजर पड़ी—जो दूर होने के कारण, बहुत छोटी - सी मालूम पड़ती थी ! सड़क को देखते ही कम-से-कम इतना मनस्तोष तो हुआ कि, हम सड़क के साथ ही चल रहे हैं और, पहुंचना चाहें तो, अब भी सड़क पकड़ सकते हैं ! पांच-सात कदम आगे बढ़कर, एक छोटी-सी पगडंडी भी नीचे की तरफ जाती हुई मालूम पड़ी ! डा० अशोककुमार ने कहा : सामने सड़क दीख रही है और यह पगडंडी भी शायद सड़क पर ही जा रही है ! चलो, पगडंडी से नीचे उतर चलें ! परेशानी से तो बच जाएंगे !

मैंने मुस्कराहट के साथ कहा : भले आदमियो ! परेशानी चाहे कितनी ही हुई हो, पर इतना तो निश्चित है कि, हम अपनी मंजिल की तरफ ही बढ़ रहे हैं ! और, इतना चलकर तथा इतना ऊपर चढ़कर भी, अगर पीछे हटते हुए उसी सड़क पर नीचे पहुंचे तो, फिर बात ही क्या बनी ? इतना हौसला किया है, तो अब नीचे की तरफ़ क्यों देखते हो ? अब तो ऊपर-ऊपर ही चलो ! कहीं-न-कहीं आगे भी राह अवश्य मिलेगी, इतना धीरज तथा विश्राम रखिए और हम अपनी मंजिल का

सिरा जरूर पा लेंगे—इतनी आस्था-निष्ठा भी हृदय में रखिए ! क्योंकि :—

"गुमरही खुद मंज़िले मक़सूद की है रहनुमा !
खिज्र मिल जाते हैं, जिन को रास्ता मिलता नहीं !!"

हमारे साथी मुनि श्री उमेश जी और अशोककुमार का विचार रहा कि, पगडंडी से नीचे सड़क पर उतर चलें और वे दोनों चल दिए अपने चुने हुए पथ पर ! इधर, तरसेमकुमार, वीरकुमार, सतीशकुमार और अपनेराम, चलते रहे पहले की तरह ऊपर ही-ऊपर ! वे दोनो साथी तो देखते-देखते सड़क पर जा पहुँचे और हम पहाड़ो की चोटियों को ही नापते रहे ! थोड़े आगे बढ़ने पर, पीछे रहने वाले युवको की मंडली भी दृष्टि में आ गई नीचे की तरफ ! अशोक तथा श्री उमेश मुनि जी भी उनके साथ मिल गए ! अब वे नीचे और हम ऊपर ! अपनी आवाज हम तक पहुँचाते रहे वे जोर लगाकर ! किन्तु, हम अपनी धुन में आगे बढते रहे ! और, बढ़ते-बढ़ते उनसे भी आगे, उसी राह पर जा पहुँचे थोड़ा नीचे की ओर उतर कर, जिस पर उन्हें ऊपर चढ़ कर आना था ! हर्षोल्लास की तरंग में मन, वाणी पर चढ कर बोल उठा :—

"सफ़र मे सईए कामिल हो तो, निकले राह मंज़िल की
कि दरिया की रवानी से बिना पड़ती है साहिल की !

अब, हम सब यात्री रास्ते के उस नये मोड़ पर आ मिले ! एक हंसी-खुशी का वातावरण मुखर हो उठा ! छाया में बैठे ! थोड़ा दम लिया ! पानी-वानी पिया ! आगे-पीछे की बात-चीत

चलो ! मैंने पूछा : अच्छा भई, अब यह बतलाओ, कुद का पड़ाव यहां से कितनी दूर रह गया है ?

युवक बोले : महाराज ! 'कुद' तो आ पहुँचे हम—यह समझ लीजिए ! इस छोटी-सी पहाड़ी के परले पार कुद है ! अब क्या है ? अब तो मैदान फ़तह कर लिया है !

प्रसन्न लहरों में हम उठे ! चले ! दो-चार उतार-चढाव पार किए ! सडक पर पहुँच गए ! सडक पर क्या पहुँच गए, कुद ही पहुँच गए और अपने पडाव के लक्ष्य-बिन्दु को पा लिया !

भी, उनके साथ ही चढ़ रहे थे।

इतने में हुआ क्या? आकाश सुरमई बादलों से घिर गया! बिजली चमकी और नन्ही-नन्ही बूंदियां शुरू हो गईं! गरम वातावरण शीतलता में परिणत हो गया। ज्यों-त्यों करके हम उस प्राण-लेवा चढ़ाई को पार करके ऊपर सड़क के मोड़ पर पहुँचे तो, मालूम हुआ कि 'पनी-टॉप' ही आ गया है! अन्दर का साहस वाणी पर उभर कर बोल उठा :—

"न शाखे गुल ही ऊँची है, न दीवारे चमन बुलबुल!
तेरी हिम्मत की कोताही, तेरी हिम्मत की पस्ती है!!"

मन का जरा-सा हेर-फेर भी, क्या-क्या रंग दिखा देता है जीवन में! हिम्मत हार जाते तो, नीचे ही बैठे रहते या सड़क के मोड़ों को ही नापते रहते अब तक! थोड़ी हिम्मत की तो ऊपर आ बैठे और, हिम्मत तथा साहस का चमत्कार-पूर्ण परिणाम देखकर भला किसे खुशी नहीं होती! इसीलिए तो, शायर भी अपनी तमन्ना की बोली में बोल रहा है :—

"बहुत चाहता हूँ, करूँ लुत्फ हासिल!
मुझे काश! मिल जाए हिम्मत कहीं से!!"

सड़क पर दस-बीस क़दम ही चले थे कि, बारिश तेज हो गई और हम दो-दो, तीन-तीन यात्री अलग-अलग देवदार के वृक्षों के नीचे खड़े हो गए! परन्तु, विशेष छाया न होने से, यहाँ पैर न लग सके! प्लास्टिक ओढ़ कर चल पड़े वहाँ से। सामने ही एक दूकान थी छोटी-सी। खड़ा होने को भी जगह कहाँ थी

क़लम की नोक पर रख कर बोल उठा था :—

"रहिए अब ऐसी जगह चल कर, जहाँ कोई न हो !
हमसख़ुन कोई न हो और हमज़बाँ कोई न हो !!
बेदरो दीवार – सा इक घर बनाना चाहिए !
कोई हमसाया न हो और पासबां कोई न हो !!
पड़िए गर बीमार तो, कोई न हो तीमारदार !
और अगर मर जाइए तो, नोहेख़्वाँ कोई न हो !!"

"और, एक दूसरा शायर भी तो इसी स्वर में अलाप रहा है अपनी ज़िन्दगी का राग :—

"इन उजड़ी हुई बस्तियों मे दिल नहीं लगता !
है जी मे यही, जा बसें, वीराना जहाँ हो !!"

"और, इस क्लेश - ताप की दुनिना से त्राण पाने के लिए ही तो, भारत के ऋषि-मुनि, त्यागी-वैरागी महात्मा निर्जन, एकान्त तपोवन में रमा करते थे, घूमा करते थे ! और तपोवन कैसा होता होगा ! ऐसा ही तो होता होगा न ! ऐसे शान्त, एकान्त तथा मनोहारी वातावरण को ही तो ढूंढा करते होंगे वे ऋषि लोग भी !

"और, ऐसी ही सुरम्य वन-स्थली तथा तपोभूमि में तो पहुच गए हैं आज हम भी ! कैसे हैं ये इधर-उधर दूर-दूर तक गिरि-शिखरों पर शान्त, भव्य, ऊपर को उठते और संकीर्ण होते गए, नुकीली अंगुलियों वाले गर्वोद्धत वृक्ष ! मानो देव-मन्दिर ही हों साक्षात् ! नीचे चारों ओर कैसी हरीतिमा बिखरी हुई है ! पक्षी भी तो चहक रहे हैं !"

इन्हीं और ऐसी ही अन्य कल्पनाओं में डूबा हुआ, मैं बरामदे में चहल-कदमी कर रहा था ! श्री उमेश मुनि जी भी, अपनी प्रसन्न एवं मस्ती-भरी मुद्रा में उस प्राकृतिक छटा को देख-निहार कर झूम रहे थे आनन्द में ! प्रकृति-नटी की रमणीय-लीला को निरखने-परखने में हम सब-कुछ भूले हुए थे दरअसल उस समय !

गगन-मंडल में सुरमई बादल छाते जा रहे थे ! सायँ-सायँ करती ठंडी हवा चल रही थी ! सरदी बढ़ती जा रही थी ! वर्षा और ठंडी हवा के कारण, इतनी ठंडक हो गई थी कि, बाहर बरामदे में खड़े रहना भी मुश्किल हो गया ! फिर भी, प्रकृति इतनी भव्य और सुन्दर थी कि, और कुछ याद ही नहीं रहता था ! दूर हिम की चादर ताने उत्तुंग गिरि-शिखर दिखाई पड़ रहे थे ! धीरे-धीरे सब-कुछ अन्धकार में सिमटता जा रहा था ! शीत इतना उग्र हो चला था कि, शरीर सिहर-सिहर उठता था ठंडी-ठंडी लहरों में !

और, इतने में ही आ पहुँचे— सागर, तिलक, सोहन लाल डोगरा और पृथ्वीसिंह, अपने कन्धों पर बिस्तरे लादे हुए ! एक विनोद - भरा संसार आबाद हो गया ! सूर्यास्त हो चला ! और, हम बैठ गए जीवन का आलोचन-प्रत्यालोचन करने के लिए अन्दर कमरे में ! तपोवन के उस शुद्ध, पवित्र एवं एकान्त वातावरण में बैठ कर, आज साधना-आराधना में भी खूब मन रमा !

थे ! सहसा, घिर आए व्योम-मंडल में कारे-कजरारे बादल ! और, नन्ही-नन्ही बूंदें और फुहारें शुरू हो गईं ! प्लास्टिक ओढ़ लिए हम ने ! क़दमों को संभालते, और भीगते-भागते पहुँच ही तो गए हम बटौत के नज़दीक आख़िर ! अब रास्ता सड़क का आ गया था ! पहाड़ों की चोटियों पर, नीचे ऊपर बंगले और कोठियां नज़र आ रही थीं ! सड़क के दोनों तरफ दूकानों की पंक्ति दूर तक चली गई है ! बटौत की बस्ती दूर-दूर तक, बिखरी हुई-सी है— कुछ ऊपर, कुछ नीचे, और कुछ सड़क के दोनों किनारों पर !

इतने में, युवक-वर्ग अगवानी के लिए आ पहुंचा ! उन के साथ बात-चीत करते, हम जल्दी ही गुरुद्वारे में पहुच गए और वहाँ से ऊपर एक पहाड़ी पर स्थित बस्ती के बीच में एक कमरे में चले गए, जहाँ हमारे ठहरने का प्रबन्ध किया गया था ! कमरा गीला था और बारिश की वजह से टप-टप टपक भी रहा था कई जगह से ! वर्षा बंद होने पर, हम भोजनादि से निवृत्त हुए और स्थान-परिवर्तन करने का इरादा हुआ ! अपना डंडा-डेरा उठा कर हम भी, नीचे गुरुद्वारे के एक कमरे में ही आ गए ! सह-यात्री युवक-वर्ग बाहर बरामदे में ठहरा हुआ था ! बटौत में हमारे सहयात्री युवक-वर्ग के साथ एक मज़ेदार घटना भी घटी ! उसी गुरुद्वारे में, एक विचित्र प्रकृति का धनी, 'संत' कहलाने वाला एक व्यक्ति भी ठहरा हुआ था कुछ दिनों से ! न संत का वेष, न संत की रहनी, न संत की करनी, न संत का कोई लक्षण ! पर, कहलाता था संत ! कभी अन्दर कोने में जा कर खड़ा हो जाता गुरु-ग्रन्थ के सामने, कभी बाहर बरामदे में घूमने लगता, कभी कुछ देखने लगता ! रहता गुमसुम, बोलता कुछ नहीं ! गुरुद्वारे के ग्रन्थी ने उसे ठहराया हुआ